प्रकाशक —
श्री लक्ष्मीराम ट्रस्ट-
जयपुर ।

प्रथमावृत्ति
१०००
मूल्य ०-/-०

फाल्गुन शुक्ला २
स० १९९३
१५ मार्च १९३७

मुद्रक-
प्रेमप्रकाश मुद्रणालय,
जयपुर

॥ प्राक्कथन ॥

१५८३

पूज्यपाद श्रद्धेय भारतविख्यात स्वामी श्री 'लक्ष्मीरामजी' महाराज आयुर्वेदाचार्य-जयपुरनिवासीने अपनी एक लाख की सम्पत्तिका "श्रीलक्ष्मीरामट्रस्टके नाम से ट्रस्ट कियाहै उसमें पांच हजार रुपये की एक निधि इसलिये रखीगई है कि उसके व्याजकी आयसे साम्प्रदायिक पुस्तकों का प्रकाशन किया जाय। स्वामी श्री दादूजी महाराज जिनके नामसे दादूपन्थी सम्प्रदाय प्रचलित हुई अपने समय के एक पहुंचे हुए महात्मा थे। उनके अनुयायियों में भी इन सवा तीनसौ वर्षों में अनेक योग्य त्यागी महात्मा होगये हैं उनमें से अनेकोंने अपने अनुभव तथा विचारों को अपने अपने समय की भाषामें 'छन्दोबद्ध' कर पुस्तकरूपमें संकलन किया है। उनकी रची हुई अनेकों पुस्तकें अभीतक अप्रकाशित हैं। उनके विचार त्यागमय थे' उनके शब्द २ में उनकी साधना की छापहै सर्वसाधारण समझ सके ऐसे शब्दोंमेही उनकी सम्पूर्ण रचनायें हैं।

उनमें अनेकों ऐसे भी हुए हैं जो संस्कृत साहित्य के भी ज्ञाता थे ' वे यदि चाहते तो अपने विचारों को संस्कृत में संकलन कर सकते थे। पर उनका उद्देश्य उन विचारों को सर्वसाधारण मे पहुंचाने का था—उनने अपना सब साहित्य

बोलचाल की भाषामे ही बनाया है । वेदान्त के गूढ़ रहस्यो को बोलचाल की सीधी भाषामे रख कर हिन्दी साहित्य के इस भागको पूर्ण करने मे उनने पर्याप्त प्रयत्न किया है-उनके इस प्रयास को जनसाधारण तक पहुचादेने के लियेही स्वामीजीने उपरोक्त व्यवस्था कीहै- उनकी इस व्यवस्थाकी पूर्ति के लिये ट्रस्टने उस सम्पत्ति के व्याजसे 'सन्त साहित्य सुमनमाला' नामकी एक सीरीज प्रकाशित करने का निश्चय कियाहै- इस निश्चय के परिणामस्वरूप उक्तमाला का यह प्रथम 'सुमन' 'बखनाजी की वाणी' आपके संमुख उपस्थित की जारही है ।

बखनांजी की वाणी की भाषा ऐसी है जिसमे मारवाड की बोलचालकी भाषा का प्राधान्य है, उसमें अनेकों मारवाडी के 'लोडै' हरिया, नाणों, ऊडो, वीज, डावडा, कथहो वूझिलै, पाघा, भूख, चींचडी, वाट, बालम, थाघ,आदि ठेठ शब्दों का प्रयोग हुवाहै, कुछ शब्द ऐसे भी प्रयुक्त हुयेहैं, जिनके अर्थोंका आज ठीक २ पता नहीं लगता है । जैसे-कावरू, वरोंसा, निकुलन, मुहकम, मिल मिला, तीधोधो-आदि इनके अपर पर्यायों की प्राप्तिका कोई साधन नहीं है कुछ शब्द नकल करनेवालों की असावधानी तथा कुछ समय के बहुत चले जाने से आज अप्रयुक्त से होगयेहैं, परमैंने ऐसे शब्दों को भी उसी रूप में रहने दिया है, उनके अर्थ

छोड दियेगये हैं । भाषा के इतिहासके लिए भाषाकी शैली उस समय की जैसी थी वैसी ही रहनी संगत है-अतः वाणीकी भाषा तथा शब्दों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया है ।

कुछ शब्दों के दो २ प्रकार के प्रयोग भी इसमें आये हैं- जैसे, गरव' ग्रब' करम' कर्म' संसै ' संसा- मैंने भी'उनके उन स्थानों में वैसेही रूप रख दिये है' जैसे उनके स्थल विशेष में हैं । वाणी का संकलन पांच पुस्तकोंके आधार पर किया गयाहै- तीन प्रतिये 'श्रीदादू महाविद्यालय' के पुस्तकालय मे थी, दो प्रतियें श्रद्धेय पुरोहित श्री हरिनारायणजी वी. ए.के संग्रह से लाई गई हैं । अधिक प्रतियों में जैसापाठ मिला वही पाठ इस पुस्तक में रखा गया है' मारवाडी भाषा के शब्दों के अर्थ तथा मिल सके जितने पर्याय भी देने का प्रयत्न किया गयाहै- वहुत से साधारण शब्दों का अर्थ भी दिया है इसका हेतु यह है कि किसी भी प्रान्तका निवासी कदाचित् इसका अवलोकन करे तो अपने देशकी भाषा में वैसे शब्दोंका प्रयोग न होनेसे उनके अर्थों से अपरिचित न रह जाय ।

इनकी वाणी के दो भागहैं एक साखीभाग दूसरा पदभाग साखी भाग छोटा और पद भाग वडाहै पदों में अनेकपद ऐसे हैं जिनमें भिन्न२ प्रकार के रूपक रखे गयेहैं-

कलेवर वढने के विचार से वैसे शब्दो के पूरे अर्थ नहीं दियेगये हैं। जिन २ पदभागो के अर्थ की आवश्यकता समझी कुछ वैसे पदभागोंका अर्थ भी दे दिया गया है। किसी किसी पदमे योगक्रिया का विवेचन है उसमे प्रयुक्त कुछ ऐसे शब्दभी है जिनका अनुभव से सम्बन्धहै वैसे शब्दोंका अर्थ मेरे साध्य नहीं था। मैं हिन्दी भाषा का ऐसा विशेष ज्ञाता भी नहीं हू-उसमे भी फिर महात्माओं की वाणी उसके यथार्थ रहस्य का ज्ञान विना वैसी साधना के साध्य नहीं। अतः सभवहै मेरे द्वारा इसका संपादन होने से अनेको प्रकार की इसमे न्यूनतायें रहगईहों- योग्य साहित्यवेत्ता तथा पाठकवर्ग एतदर्थ क्षमा करेंगे- तथा इनके प्रवचन मे आत्म गवेषणाकी जो धारा प्रवाहित हुई है, उसका रसास्वादन कर समत्व भावनाकी भावना से अपने को अनुप्राणित कर हिन्दी साहित्यके इस प्रच्छिन्न धन को सर्वसाधारण तक पहुंचाने में सहायक होंगे।

श्रीदादूमहाविद्यालय,
फाल्गुन शुक्ला ३
१९९३

निवेदक—
मंगलदास स्वामी

* * *

"बषनाजी और उनकी बाणी"

दादू सम्प्रदाय के प्रथम पुरुष परम महात्मा महाराज श्रीदादू जी के बावन प्रधान शिष्योंमें बखना जी अन्यतम थे- वडे सुन्दर दास जी- रज्जबजी- जनगोपाल जी- और जगजीवणजी- जगन्नाथ दास जी--आदि प्रधान शिष्यों में उनकी गणनाथी। साधू सम्प्रदाय में प्राचीन पुरुषोंके वृत्त लिखने की प्रणाली न होने से इनका प्रामाणिक जीवन चरित्र नहीं मिलता। परम्परा से जो कुछ सुनाहुवाहै--वही इनकी जीवनी का मशाला समझिये

"जन्म स्थान"

वखनाजी नराणे ग्रामके रहने वाले थे' जिस जगह स्वामी श्रीदादू जी ने अपने अन्तिम समय में निवास किया था-। यह ग्राम सांभर से तीन कोस पूर्व दक्षिण की कौन में वसाहुवाहै' आजसे चारसौ वर्ष पहले भी इसकी दशा आजसे कुछ अच्छीही थी कमनहीं इस समय भी यह एक अच्छा कसबाहै। आस पासके गांवों की इसे मंढी समझिये- बी.बी.सी. आई रेलवे की छोटी लाइन जो दिल्ली से अहमदाबादगई है उसमें फुलेरे जंकशन से आगे इसी का स्टेशन है। वखनाजी इसी ग्राममें पैदा हुए और इसी में इनका देहावसान हुवा* इनका जन्म स्थान इसी कसवे में हुवाथा- इसमें दादूजी महाराज के अपर शिष्यों की रचना

के प्रमाण भी मिलते हैं- जैसे राघव दासजी ने महाराजके बावन शिष्यों का वर्णन किया है वहा बखनाजी के निवास के लिये यह पद्य कहाहै–

बपनों शंकर पाक, जस्सो चान्दो प्रागटाक
व्होऊ गोपाल ताक गुरु द्वारै राजही

इसमे इतने शिष्यों का गुरु द्वारे मे रहना बतलायाहै ।
जैमल जी कृत भक्त बिडदावली मे भी उन ने कहाहै

बपनों सन्तक शब्दै सारो, नगर नरायणौ माहैं द्वारो ॥

श्रीदादूजी महाराज की जन्म लीला के रचयिता जन गोपालजी ने भी शिष्य प्रसंग वर्णन मे लिखाहै ।

नगर नराणैं बपनां ल्यायो, मिले संत बहु विधि सुखपायो
बपना लीला नीकी, कीनी, स्वामी रहे द्योसतहा तीनी

इनसे स्पष्ट सिद्ध है कि, उनका जन्म स्थान नराणाहीथा-
उनका जन्म किस सम्वत् मे हुवा यहठीक २ ज्ञातनहीं- पर उनने दादूजी महाराजसे उपदेश लियाथा दादूजी महाराज सांभर मे सं० १६२० से ३२तक ठहरे थे ऐसा माधोदासजी की जन्म लीला मे लिखाहै- इससे यह अनुमान असंगत नहीं कि बखनाजी का दादूजी महाराज से साभर में ही साक्षात्कार हुआहो साभर मे जब दादूजी के उपदेश आदेश की धूम धाम मची तब उसके आस पास के गावों में उसकी सूचना पहुचना सगतथी नराणा साभर

से पांच कोस दूरहै दादूजी की प्रसिद्धि जब नराणे वालोंको ज्ञातहुई होगी तब वहांसेभी कई व्यक्ति सांभर आने जाने लगेहों और उन्हीं में वखनांजी भी होंतो- वखनाजी का जन्म सोलह सौ से सोलहसोदसके अन्दर २ का समझना चाहिए वेदादूजी से आयुमे ज्यादा छोटे नहीं थे- उनकी जाति के विषय में कई वातें सुनी जाती हैं- कोई उन्हे 'लखारा' कोई 'कलाल' और कोई उन्हें 'मैरासी' तथा राजपूत भी कहतेहैं- पर निश्चय रूप से कोई सी भी वातनहीं कही जासकती वे हिन्दुथे या मुसलमान इसमें भी मत भेदहै- पर अधिकमत उनके मुसल्मान होनेके पक्षमें हैं- क्यों कि,'रज्जवजी' 'वखनांजी' निजाम तथा वाजिदजी के मुसल्मान शिष्यथे- ऐसी परम्परागत जनश्रुति है। वे मुसल्मान थे या हिन्दू उनके जाति का लेश मात्र भी पक्ष नहीं था वे जातीय अभिमान से सर्वथा मुक्त थे। वे प्राणी मात्र की एक ही जाति मानते और जानते थे-वे गृहस्थथे- और दादूजी महाराज से उपदेश लेनेपर भी गृहस्थही रहे उनका देहावसान दादूजी महाराज के ब्रह्मलीन होने के वाद हुवा था क्यों कि, जिस समय दादूजी महाराज का स्वर्गारोहण हुवा तव वखनाजी मौजूदथे उनने दादूजी महाराज के वियोग में जो पद गाया है उससे प्रतीत होताहै कि, उनकी उनमें कितनी अगाध श्रद्धाथी वह निम्न प्रकारसे है।

* राग मलार *

वीछडया राम सनेहीरे, म्हारे मन पछतावो येहीरे ।।
विलपी सपी सहेलीरे, ज्यों जल बिन नागर वेलीरे ।।
वा मुलकनि की छवि छोड़ीरे, म्हारे रै गई हिरदा मांहीरे ।।
को ऊहि उणिहारे नाहींरे, हू ढूढ़ि रही जग मांहीरे ।।
सब फीको म्हारे भाईरे, मंडली को मंडण नाहीरे ।।
कूण सभा मे सोहेरे, जाकी निर्मल वाणी मोहेरे ।।
भरि २ प्रेम पिलावेरे, कोई दादू आणि मिलावेरे ।।
बपना बहुत विसूरेरे, दरसन के कारण झूरेरे ।।१।।

इस पद से स्पष्ट प्रतीत होता है कि, वखनाजी दादूजी महाराज के ब्रह्मलीन होने के समय मौजूद थे। वे उनके कितने वर्ष बाद स्वर्गबासी हुए– इसका ठीक पता लगना कठिन है–संभव है वे १६६० से १६८० के बीच मे ब्रह्मलीन हुये हों।

"बाणी निर्माण"

उनकी रचना यही है जो आपके सम्मुख उपस्थित की गई है–बाणी के अतिरिक्त और कोई उनकी रचना दृष्टि मे आई नहीं है–इसका रचनाकाल १६३२ से पहले का तो ज्ञात होता नहीं–क्योंकि माधोदासजी की जन्मलीला में सं० १६२९ मे सांभर में कई शिष्यों के उपदेश ग्रहण कावर्णन

है–उस में वखनाजी का नाम भी आयाहै–अतः १६२६ मेंही यदि उन्हों ने उपदेश लियाहै तो तत्काल ही वाणी की रचना करने लग गये हों सो वात नहीं–उनने १०,५ वर्ष परमात्मा के चिन्तन में विताने के वादही कुछ रचना प्रारम्भ की होगी ऐसी दशा में उनकी वाणी का रचना काल १६४० के पीछे का मानना ही संगत है। वाणी की रचना एक कालमें ही होगई हो सो वातनहीं इसकी रचना धीरे २ हुई है यह वात उपरोक्त पद्यसे ही ज्ञातहोती है कारण यह पद्य सं० १६६० के अन्त में की रचना है कुछ पद्य इसके भी पीछे के वने हुये हैं–अतः इनकी रचना का काल १६४० से १६७० तक का समझना चाहिए–

॥ रचना का महत्व ॥

उनकी रचना का परीक्षण साहितिक दृष्टि से किया जाना संगत नही है क्यों कि वे कोई कवि या साहित्य कार नहीं थे-वेएक सच्चे साधक थे परमात्मा के लिये सब कुछ अर्पण करदेने वाली भावनाही उनकी साहित्य धारा थी–उनका लक्ष्य था सचाई को पाना–और प्राप्त हुई सचाई को संसार के सामने रखना–उनने अपनी निरन्तर साधना से उस अलौकिक सत्यकी प्राप्तिकी-जिसको कि, साधक समुदाय अपने जीवनका चरम उद्देश्य मानता है–उसीको सीधे सादे शब्दों मे संसार के सामने रख दिया–उनकी रचना में शब्दो

का जोड तोड़ और आलंकारिक भापाका सर्वथा अभावहै— शब्दालकार शून्य होते हुए भी उन सीधे सादे शब्दों में भावकी ओजको न्यूनता नहीं है—वे शब्द हृदय पर प्रभाव करने वाले है—भापाकी सादगी ने भावको किसी प्रकार न्यून नहीं होने दियाहै प्रत्युत्त औरभी प्रभावोत्पादक वना दियाहै ।

उनके पदों को पढिये किसी २ पदमे भावोद्रेक का ऐसा प्रवाह है कि, पाठक उससे प्रभावित हुये विना नहीं रह सकते उनके उस ईश्वरीय प्रेमकी अनन्यता के पदपद मे प्रमाण दृपि गत होते हैं, परमात्मा मे एकान्त अनुरागही उनकी रचना के प्राण हैं इसीं दृष्टिसे उनकी रचनाका अवलोकन कीजिए तभी उसका ठीक महत्व ज्ञात होगा ।

॥ उनके सिद्धान्त ॥

उन की वाणी का आद्यन्त अवलोकन करने से ज्ञात होगा कि, वे परमात्मा के 'नाम' की उपासना करनाही मुख्य ध्येय मानते थे प्राणी मात्र मे जल थल में जिस व्यापक चेतनकी सत्ताहै वही उनका उपास्यदेवथा मूर्ति आदिको उतना महत्व नहीं देतेथे- मावडिया, भैरू आदिकी पूजा करना वे असगत समझते थे, तीर्थ व्रत पूजा, उपासना, आदि काम्य कर्म जो अधिक तथा दिखाऊ तरीके से किये जाते हैं, उन्हें

वे निरर्थक समझते थे जाति पांति का भेद भाव उन की निगाह में असंगतथा अहिंसक हो उसके साथ प्रेम भाव रखते हुए उस व्यापक चेतन को प्राप्त करना जो अणु २ में प्रकाशित है यही उनका चरम सिद्धान्त था इसी का उनकी वाणी मे यत्र तत्र वर्णन है

॥ उनका महत्व ॥

अपने समय में उनकी क्या दशा रही इसका विचार करने पर यही ज्ञात होता है कि वे अपने समय के बहुत उच्च तथा सच्चे पुरुषथे गृहस्थी होते हुए भी उनका महत्व परम वीत रागियों से न्यून नहीं था। दादूजी महाराज के सभी प्रधान शिष्य उनको आदरणीय दृष्टि से देखतेथे जन समुदाय भी उनकी पुनीतता, परमात्मा का प्रेम, और सत्य निष्ठा, देख उनमें श्रद्धा रखता था। उनके पदों का गान उस समय के महात्मा तथा गृहस्थ बडे अनुराग से किया करतेथे उनके महत्व के विषय में भक्तमालके रचयिता राघोजी महाराज के नीचे लिखे तीन पद्योंका अवलोकनही पर्याप्तहै-

गुरु भगता जन दास शील सुठ सुमरन सारो
विरह लपेटे शब्द लगत तन करत सुभारो।
हरिरस प्रिय मदमत्त रैनदिनरहै खुमारी
परचै वाणी विशद सुनत प्रभु बहुत पियारी॥

माया ममता मान मद राघो तन मन मारि छड ।
दादू दीनदयाल के है वपनो वानैत वड ॥
दादू जी के पंथ मेहै वपनो वनैत कवि अति ही चुराहो ततवे
त्ता तुकतान को ।
जाकी ब्रह्मवाणी को वपान वणि आवतन भारथ मे वल
जैसे पारथ के वॉन को ।
जाके पद साखी हद वेहदप्रवेश भये जहॉ लगि आवागम
होत शशि भान को
राघो कहै रात दिन राम जी रिझायो निज गावन न मानी
हार गन्धर्व है गान को ॥
वषनो महत हरिरातो रसमातो प्रेम वोलत सुहातो मन
मोहै जाकी वाणी है
गन्धर्व ज्यूं गावै ढर नैन नीर आवेप्रभु प्रीति लडावै सर्व
हीको सुखदानी है ।
सुमिरन सासों सास एक नाम को अभ्यास जग सों उदास
रहै ऐसो गलतानी है
दिल्लीपति आये तव काजी समझाये सव पण्डित नवावि
और ससै स्याह भानी है ॥

जीवन की विशेष घटनायें–

उन के जीवन मे दो घटनाये विशेष महत्वप्रद हैं– पहिली घटना तो वह है जिस से उनका सम्बन्ध दादूजी

महाराज से हुआ। बखनाजी की आवाज बहुत सुरीली थी और उन को गानेका शौक भी था। वे साधारणतया प्रायः मित्रमण्डलीमें बैठे अपने सुरीले कण्ठ से साथियों का मनोविनोद किया करते थे। एक समय वे कोई गीत गा रहे थे उस समय उधर से दादूजी महाराज का आना होगया। उन की सरस आवाज महाराज सुनने लग गये पर उस गीत का भाव अच्छा नहीं था। महाराज ने संकल्प किया कि यह व्यक्ति जिस प्रेम से इस गीत को तल्लीन हो कर गारहा है उस प्रेम से तल्लीन होकर परमात्मा का गुणानुवाद गावे तो कितना अच्छा हो। पश्चात् साक्षात्कार होने पर महाराज ने उन को यही उपदेश दिया। महाराज का यह उपदेश सुनते ही उन की स्थिति बदल गई और उसी दिन उन्हों ने परमात्मा का गुणानुवाद गाना शुरू कर दिया। इस की पुष्टि बखना जी के इस पद से भी होती है-

"म्हारे गुरां कह्यो सोई कर स्यूं हो
खार समंद में मीठी वेरी कर सूधे घड़लै भर स्यूं हो"

दूसरी घटना उस समय की है जब दादूजी महराज के पश्चात् गरीबदासजी नराने में विराजते थे और अजमेर जाते हुए जहांगीर ने नराणे में ठहर कर उन का परीक्षण करना चाहा था। उस समय जहांगीर ने काजी तथा पण्डितों से यह प्रश्न किया था कि परमात्माने यह सृष्टि किस

समय रची। इस का उत्तर बखना जी ने जैसा दिया उस का उन्हों ने अपनी वाणी में संकेत किया है।

प्रश्न-

"काजी पण्डित बूझिया, किन ज्वाबन दीया।
'बपना' वरियां कौण थी, जब सब कुछ कीया"॥

उत्तर—

"जिहिं वरियां यहु सब हुआ, सो हम किया विचार।
'बपना, वरियाँ खुशी की, करता सिरजनहार"॥

बपनाजी का उत्तर बहुत ही सङ्गत है। चेतन का संसर्ग प्रकृति से होता है तब सत्त्वगुण की अभिवृद्धि होती है। सत्त्वगुण आनन्द रूप माना गया है अतः यह ठीक है कि—"एकोऽहं बहुस्याम्"। यह बात तभी होती है जब आनन्द का आधिक्य होता है॥—यही दो उन के जीवन की विशेष घटनायें ज्ञात हुई है इनके अतिरिक्त और भी कोई घटना हुई होतो पता नहीं। बखनाजी की समाधि कुछ वर्ष पहिले तक नराणे मे दादूजी महाराज के विराजने वाले त्रिपोलिये के पास मौजूद थी।

बषनाजी गवैये थे इसी से उन्हों ने पदोंही का निर्माण अधिक किया है। ग्राम्य भाषा में जीवन के प्रश्न को सुलझाने का महात्माओं का यह प्रयास हिन्दी साहित्य के लिये गौरव की बात है। उस के प्रकाशन का यह उद्योग हिन्दी प्रेमी विद्वानों के लिये आनन्द का विषय होगा ऐसी आशा करना असंगत नहीं होगा। — स्वामी मंगलदास

॥ श्रीदादूदयालवे नमः ॥

॥ श्रीस्वामी "दादू" जी के शिष्य बषनाजी की बाणी ॥

॥ गुरदेव का अंग[1] ॥

॥ साषी ॥

गुर बूझ्यांतैं[2] संसौ भाजै, अण बूझ्यांतैं संसो रहै ॥
अनभै[3] कथा अगोचर वाणी, बषनौं बूझै गुरु दादू कहै ॥१॥

॥ प्रश्न ॥

गुर कौं सिष बूझै सदा, जे गुर करे सहाइ ॥
जहां हमारा हरि बसै, सो दादू देश बताइ ॥ २ ॥

॥ उत्तर ॥

वांवैं डिगी[5] न दांहिणैं, मती अपूठा[6] थाइ ॥
गुर "दादू" देश बताइया, "वषना" उस मारगि जाइ ॥३॥

---

[1] अग=महात्माओं की वाणी में यह शब्द प्रकरण तथा अध्याय के अर्थ में प्रयुक्त होता है। [2] बूझ्यां=पूछने से। [3] अनभै=आत्मप्रत्यक्ष। [4] अगोचर=इन्द्रयातीत। डिगी=झुक। [6] अपूठा=पीछा।

लातां मारी थापां मारी, * चाकि चढ़ाइरु फेरी ॥
"वपना,, सतगुर घड़िया लौडे[1], तौ माटी की गति मेरी ॥४॥
थापी थूपी अगनि में दीनीं, काढ़िर ठौला-करिया[2] ॥
"बषना,, बासण[3] सारा बाज्या, सो घर माहें धरिया ॥५॥
पाछैं कलस कहांवण लागा, वंदैं सब संसारा ॥
राम रसाइण सों भरि मेल्है, ऐसा गुरू हमारा ॥ ६ ॥
गुर मिलिया तब †पाथर भीगा, चूना कीया गारी ॥
पांणी मांहिं पषाण भिजोया, "वपना,, गुर की वलिहारी ॥७॥

॥ छप्पय ॥

*अकलि तहां वे अकलि, सुमति तहां कुमति कमाई ।
बुद्धि तहां करि कुबुधि, पूरि तहां ओछी आई ॥

---

१ लौडे=घुमावे । २ ठौला करिया=बजाया । ३ बासण=वर्त्तन

†पाथर भीगा—साधारण स्थिति में पत्थर पानी से नहीं भीगता पर जब पत्थर को अग्नि में जला लिया जाता है तब वह "कली,, बनकर भीग जाता है। ऐसेही गुरुसंसर्ग से हृदय की कठोरता निवृत्त होने पर वह 'हरिरस' से भीग जाता है।

*छप्पय— अर्थ-जहां नित्य अनित्य पदार्थों का भेद समझना था वहां अनित्य पदार्थों को नित्य समझ बेसमझी का कार्य किया। जहां आत्मा सत्य है ससारसुख अनित्य है इस सुविचार को दृढ करना था वहा संसारसुख की आकाँक्षा कर कुविचार की अभिवृद्धि की। जहां विषय

साहिब सौं ल्यौ टूटि, जाइ औरा दिशि लागी ॥
सुधि बुधि का वल मिटया, बात परचै की भागी ॥
सुरति[१] टूटि चहुं दिशि गई, ज्यौं जाणों त्यों जोड़िये ॥
अब वपना का वल नहीं, गुर दादू गई वहोड़िये[२] ॥ ८ ॥

॥ साषी ॥

वपना सुधि बुधि गई शरीर की, किया अकलि का नास ॥
गई वहोडण[३] गुर मिल्या, वाहुड़ि किया प्रकास ॥ ९ ॥

वासना का दमनकर शमदमादि साधन सम्पत्ति द्वारा मनोनिग्रह कर बुद्धिमत्ता का कार्य करना था वहां विषय वासना में अधिक उलझ कुबुद्धि का कार्य किया। जहां आत्मा एक तथा सर्वव्यापक है इस सिद्धान्त को अपना समत्वभाव को स्थिर करना था वहां पिता, पुत्र, स्त्री, भाई आदि के सम्बन्ध में वद्ध हो भेद-दृष्टि को वढाया। साहब-परमात्मा उससे वृत्ति का सम्बन्ध टूट गया-लय-वृत्ति धन, पुत्र,. विषय सुखादि में जाकर अनुरक्त होगई। सद्विचार तथा सुबुद्धि का वल क्षीण हो रहा है। परचै=परमात्मा से समता की वात नष्ट होगई। सुरति=ध्यान या वृत्ति अस्थिर हो मिथ्या सुखभोगादि की अनन्त धारा में वह गई है। 'वपनाजी' कहते हैं, हे सद्गुरु श्रीदादूजी महाराजा अब मेरे वश की हाथ की वात नहीं है इस दशा में आपही गई को मोडनेवाले हैं' विगडी को वनानेवाले हैं। अब जैसे उचित समझैं वैसे ही इस टूटी हुई अस्थिर वृत्ति को पुन: परमपिता परमेश्वर के चरणकमलों में जोडिये।

[२] वहोडिये=मौडिये-फेरिये। [३] वहोडण=मोडनेवाला।

राम नाम प्रकास विधि, सत गुर देइ वताइ ॥
तन का गुर के ज्ञांन विन, वपना तिमिर न जाइ ॥ १० ॥
*वांवन तर गुर दरससूं, वणसिप पलट्या जांहि ॥
सूका चंदन शब्द मैं, "वपना" सो वल नांहि ॥११॥
पतिव्रता पति संग किया, सुप उपजै संतानि ॥
पति विनस्यां थिर धर्म्म छै, पणि "वपनां" सुप की हाणि ॥१२॥
ढूढै दीप पतंग नैं, तौ "वपनां" विरद[1] लजाइ ॥
दीपक मांहैं जोति व्है, तौ घणां मिलैंगा आइ ॥१३॥
षोटौ गरथ[2] पारिपू पोटौ, पोटौ दीजै लीजै ॥
बपनौं कहै बणिज[3] त्यांह सेती, कांयौं देपिरु कीजै ॥१४॥
देषि बजा माटी का बासण, षुरदै[4] हांडी लीजै ॥
पोज्यां बूझ्यां परिष विहूंणां, "बपनां" गुर क्यों कीजै ॥१५॥
ज्याहर ठगाया सो पछिताया, पहली प्रीति न तूटी ॥

---

*गुरु-दर्शन गुरु का ससर्ग 'वावनतर' मलय चन्दन के वृक्ष के समान है जिस से शिष्य रूपी वनवृक्ष बदल कर चन्दन बन जाते हैं पर बषनाजी कहते हैं कि गुरु का शब्द है वह सूखे चन्दन के समान है उसमें ज्ञान तथा उपदेशरूपी गन्ध तो रहता है पर उससे शिष्यरूपी वनवृक्ष साधारण अधिकारी बदलते नहीं है ।

[1] विरद = महिमा । [2] गरथ = द्रव्य — धन । [3] बणिज = व्यापार, लेनदेन । [4] षुरदै = छोटीमोटी वस्तु ।

परष बिहूणां[1] फड़कै[2] बांधे, तिहिं की चारथूं फूटी ॥१६॥
“वपनां” मन बीपरि गया, बीण्यां चुण्यां न जाइ ॥
सार चमक[3] सेती लिया, शब्द गुरू का लाइ ॥१७॥
सीसै रूपा[4] सोधतां, मैल रहै कुछ नांहि ॥
गुर दादू सोधै शब्द सूं, “वपनां” का मन मांहि ॥१८॥
सति गुर आंजण[5] आंजिया, भरि ज्ञांन सलाई ॥
तब ज्यूं था त्यूं सूझिया, “वपनां” कूं भाई ॥१९॥
आप्यूं आंधा कांनौं बोडा[6], जिभ्या गूंग अपंग ॥
सो गुर दादू सारा किया, वपनां था इसा अंग ॥२०॥
“वपना” भाव भलका[7] सुरति सर[8], ध्यांन धनक[9] गहि तांण ॥
मनकी मूंठि जहां मंडी, चौट तहीं ठै जांणि ॥२१॥
भलका भाव सुरति की सांठी[10], चोट करी गुर दीठै[11] ॥
सांठी सुरति अपूठी आई, भलका रह्या तहीं ठै[12] ॥२२॥
“वपनां” वांणी वरसणीं, वरसै गहर गंभीर ॥
सूकानैं हरिया करै, गुर वांणी का नीर ॥२३॥

---

[1] बिहूणा-बिना । [2] फड़कै-पल्ले, वस्त्रके किनारे । [3] चमक चुम्बक । [4] रूपा-चांदी । [5] आंजण अंजन । [6] बोडा बहरा । [7] भलका भाला । [8] सर = बांण । [9] धनक = धनुष । [10] सांठी-बाण के फल को छोड शेष भाग को कहते हैं । [11] दीठै-देखते । [12] तहीं ठै वहीं ।

"बषनां" वांणी बरसणीं, अमृत बरसण लाग ॥
बैणां[१] पुणगां[२] ओसरी[३], भीगा ज्यांह सिरि भाग ॥२४॥
"बषनां" बांणीं बरसणीं, बरसैं अमृत धार ॥
साध सवाया पूजिये, सो वांणी का उपगार ॥२५॥
"बषनां" घटि टकसाल है, नांणौ[४] घडि जै सोइ ॥
जिहि पाडौ[५] लागै नहीं, खरी कहै न कोइ ॥२६॥
"बषनां" दूध साध की वाणी, सो हिरदै नहिं धारै ॥
गलथणी[६] छाली[७] गल नीचैं, मूरिष थोबा[८] मारै ॥२७॥
पूजै देवी देवनैं, गुण धारया की आश ॥
"बषनां" पूजि पुजांवतां, मूरिष गया निरास ॥२८॥
भसमांसुर सभू छल्यौ, तौ कांई हूवौ ॥
गौरी जिहिं की तिहिं मिलि, सोई जलि मूवौ ॥२९॥
*जन रज्जबनैं संपदा, गुर दादू बकसी आप ॥
"बषनां" कै किहूं आपदा, यां चरणा कौ प्रताप ॥३०॥

---

१ बैणा - वचन। २ पुणगी - बून्दें। ३ ओसरी - बरसने लगी। ४ नाणों-सिक्का रुपये-म्होर, गिन्नी। ५ पाडो-ठस्सा। ६ गलथणी गले में स्तनवाली। ७ छाली बकरी। ८ थोबा-गाय भैंस के बच्चे का स्तन पर मुँह मारना।

*यह एक प्रसग की साषी है-एकवार बषनेजी की स्त्री ने बषने जी से कहा कि आप और रज्जबजी दोनों महाराज के शिष्य हैं-पर

॥ सुमिरण को अंग ॥

रांम नांम जिन ओषदी, सतगुर दई बताइ ॥
ओषदि पाइर पछि[१] रहै, तो "वषनां" वेदन[२] जाइ ॥१॥
पछि पांणी राषै नहीं, जौ भावै सो षाइ ॥
तौ ओषदि गुण नां करै, "वषनां" व्याधि न जाइ ॥२॥
इहिं ओषधतैं साध सब, अनत उधारी देह ॥
कोई कुपछ[३] का फेर है, नहीं त ओषद येह ॥३॥
सत जत[४] सांच पिमा दया, भाव भगति पछि लेह ॥
तौ अमर ओषदी गुण करै, "वषनां" उधरै देह ॥४॥
अमर जड़ी पांनैं[५] पडी, सो सूंघी सत जाणि ॥
"वपनां" विसहर[६] सूं लडै, न्योल[७] जडी के पांणि[८] ॥५॥

देखो रज्जबजी पर महाराज दादूजी की मर्जी अधिक है जिससे वे तो सर्वदा आनन्द में रहते हैं--तुम पर उनकी दया कम मालुम देती है जिससे आप वैसे आनन्दमग्न और सुखी नहीं-तब बषनेजी ने इस साषी में उसका उत्तर दिया कि मेरे जो आनन्द में कमी है वह आपके ही चरणों का प्रताप है गुरु दादूजी ने पूर्ण ही कृपा की है।

१ पछि--पथ्य। २ वेदन- वेदना, दुःख। ३ कुपछ-कुपथ्य। ४ जत-ब्रह्मचर्य। ५ पांने पडी-हाथ लगी। ६ विसहर -सर्प। यह शब्द विषधर के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है। ७ न्योल -नकुल-नोलिया। ८ पांणि=सहारे।

कीडी कुंजर सूँ लडै, गाइ सिंघ कै संग ॥
“वपना” भजन प्रताप थैं, निवला सवलौं सग ॥६॥

जे डंक लागें सर्प का, तार्थैं लहरि न जाइँ ॥
विष पालण “वपनां” कनैं, नारायण को नाँव ॥७॥

॥ कुण्डलिया छन्द ॥

“वपनां” वहुतेरी करौ, हरि सुमिरण की प्यास ॥
राम नाम जपवौ करौ, छह रुति वारह मास ॥
छह रुति वारह मास, देषि ऐसी विधि कीजै ॥
माया तैं मन टालि, नाव गोविंद का लीजै ॥
बिन लियां न पावस्यौ[1], वात ज्यों कहो अनेरी[2] ॥
हरि सुमिरण की प्यास, करौ “वपना” वहुतेरी ॥८॥

॥ साषी ॥

पहली था सौ अव नहीं, अव सौ पछैं न थाइ ॥
हरि भजि विलम न कीजिये, “वपनां” वारौ[3] जाइ ॥९॥
“वषना” वांणीं सो भली, जा वाणीं मे राम ॥
वकणा सुणनां वोलणां, राम विना वेकांम ॥१०॥
जे बोल्या तौ राम कहि, जे चुपका तौ राम ॥

---

[1] पावस्यो-पावोगे। [2] अनेरी-अयोग्य-मिथ्या। [3] वारौ-अवसर, मौका।

मन मनसा हिरदा महीं, "वपना" यहु विश्रांम ॥११॥
*आठ चौक नौ सोलहनसोहै, जे मुप मंडणां न होइ ॥
अैसैं हरि का नांव बिन, "वपनां" सोभन कोइ ॥१२॥
कुणका[1] वीणत[2] क्यूं फिरै, पूरी रासि[3] वठाइ ॥
कहि "वपनां" तिहिं दासकूं, कवहूं काल न थाइ ॥१३॥
सब आया उस एक मैं, दही मही घृत सूध ॥
"वपनां" वाकी क्या रह्या, जब दुहि पीया दूध ॥१४॥

॥ सापी ॥

॥विरह का अंग ॥

सुणि जै ऊंडौ[4] गाजतौ, शिपरां[5] वीज[6] पिंवाहि[7] ॥
"वपनां" वादल विरह का, वरसि वरसि भरि जांहि ॥१॥
दौं[8]दा धा[9]हरिया हुवा, वंध्या सनेहां हेत ॥
ऊपरि वूठा[10] राम रस, "वपनां,, निपनां[11] खेत ॥ २ ॥

---

*आठ चौक बत्तीस दाँत नौ नौरस और नौद्वार युक्त यह सुन्दर शरीर सोलह से सोलह शृंगार येकोई अच्छे नहीं लगसक्ते जब तक कि मनुष्य का मुख हरिनाम के शृङ्गार से युक्त नहीं होता।

१ कुणका=दाखें। २ वीणत=चुगते। ३ राशि=ढेर। ४ ऊँडो=गहरा, गभीर। ५ शिपरां=पहाड की चोटियें। ६ वीज=बिजली ७ पिंवाहि=चमकै। ८ दौं=दावानल। ९ दाधा-जलाहुवा। १० वूठा=वरसा। ११ निपनां-उपजाऊ।

हांजी कहत होइ भल, नांजी कहैं तब नास ॥
"वपनां" कहि नैं क्यूं वणैं[1], गहिली[2] सौं घर वास ॥३॥
आया प्रेम कहां गया, देपै था सब कोइ ॥
हसतां वारन रोवतां, "वपनां" प्रेम न होइ ॥४॥
आया होइ तो जाइ क्यू, न पीडा न पुकारि ॥
लोक दिपावा करै थी, "वपनां" माथैं मारि ॥५॥

॥ प्रीति को अग ॥

॥ प्रश्न ॥

सरवर कवलन वसन्त रुति[3], ना वासना[4] सुमिठ ॥
कहि "बषनां" किहिं कारणैं, भँवरा भसम वयठ ॥१॥

॥ उत्तर ॥

वनमैं होती केतकी, जरी जु काहू दंगि ॥
भँवर प्रीति कै कारणैं, भसम चढावत अंगि ॥२॥
प्रीतम के पग परसिये, मुझ देखन का चाव ॥
तहाँ ले शीश निवाइये, जहां धरे थे पांव ॥ श्री दादू वचन

॥ प्रश्न ॥

चकोर अंगारे क्यूं चुगैं, चुगि देह जरावै ॥

---

[1] वणैं-मेल हो, एकता हो। [2] गहिली--पागल। [3] रुति ऋतु। [4] वासना-सुगन्ध।

कहि "बपना,, किहिं कारणैं, कोई मरम लषावै ॥३॥

॥ उत्तर ॥

[1]स्यौ बिभूति कबहूँ करै, लावैं उस ठांई[2] ॥
"वपनां" मस्तक चन्दहै, मिलि बाकै तांई ॥४॥

॥ प्रमाणमें श्रीदादू वचन ॥

जिहिं घट प्रगट राम है, ॥

॥ परचाकौ अंग ॥

दूध मिल्यौ ज्यूं नीरमैं, जल मिसरी इकरूप ॥
सेवग स्वांमी नांवहै, "वपनां" एक सरूप ॥१॥

॥ जरणाकौ अंग ॥

भरिया होइ तौ कदे न डोलै, ज्ञान ध्यान गुर पुरा ॥
"वपनां" ओछै वासणि पांणी, झलकै[3] सदा अधूरा ॥१॥
भर्‍या न फूटै चिणगन[4] छूटै, जरणां कहिये ताहि ॥
"वपनां" कहै समाई[5] तिहि मैं, सो वोलिविगूचैनांहि ‡॥

---

[1] स्यौ–शिव । [2] ठाँई–जगह–स्थान । [3] झलकै–वर्तन में पानी हिल हिल कर वाहर निकले । [4] चिणगन छूटे–घडे में से कोई छोटी कंकरी निकल छिद्र न हो । [5] समाई–गहराई गंभीरता । ‡ सो वोली विगूचे नाहि । गंभीर मनुष्य और पूरा भराहुवा घट व्यर्थ वोलकर ओछापन नहीं दिखलाते यह भावहै।

॥ हैरान कौ अंग ॥

तिरि तेरू थाके सबै, लहै न कोई पार ॥
"वपनां" वेहद हद नहीं, वे कीमति करतार ॥१॥
"वपनां" वेद कतेबौ कागदौं, लिष्या न आवे जांनि ॥
पषी उडया अकाश मैं, सब अपणैं उनमानि[1] ॥२॥

॥ लैकौ अंग ॥

*कौडी रमतां डावड़ौ[2], डरतौ सासन लेइ ॥
"वपनां" साहिव तौ मिलै, यौं लै चरणां देइ ॥ १ ॥
+कौसा चौसर लैणनैं, "वपनां" जलमैं जाइ ॥
विलबन लावै डरपतौ, देपत सीभयौ आइ ॥ २ ॥

---

[1] उनमानी–अन्दाज । [2] डावड़ो–बालक ।

*कौडी का खेल खेलनेवाला लडका माता पिता के भय से डरता हुवा सांस नही लेता उसकी वृत्ति बारबार इस ओर खिचती है कि माता पिता आदि में से कोई देख न ले मतलब, खेल खेलते हुये भी उसकी आन्तरिक वृत्ति माता पिता की ओर खिची रहती है वपनाजी कहते हैं कि इसी तरह ससार के सब काम करते हुये हर समय परमात्मा के चरणों का ध्यान बना रहे तभी परमात्मा की प्राप्ति होती है ।

+ मरजीवा चौसर रत्नादि लेने को पानी में डुबकी लगाता है पर श्वास टूटने के भयसे ज्यादा देर पानी मे नहीं ठहरता उसका ध्यान बाहर निकलने की ओर लगा रहता है इसी से वह पानी में

यौं लै लावौ रामसूं, "वपनां" सारौ काम ॥
अवार[१] हूवां पंथी[२] डरै, कब घरि जास्यूं राम ॥ ३॥

॥ हरि विमुख भुलावणि को अंग ॥

"वपनां" बहुत वर नसिया[३], जे हरि वीसरिया[४] ॥
ते भरिया संसार मैं, रीता[५] नीसरिया ॥१॥
"वपनां" बहुत वर नसिया, ज्यांह विसार्यौ राम ॥
ते आया ही अण आइया, सर्यो न कोई काम ॥२॥

॥ मन को अंग ॥

मन मोटा मन पातला, मन पांणी मन लाइ ॥
जैसी आवै मन माहिं, मन तैसा ह्वै जाइ ॥१॥
मन मांगै परि देइ मत, दुषी करैगा पाइ ॥
चूंची[६] पांपै[७] चेलका[८], यौं मनकौं वैलाइ[९] ॥२॥

अधिक देर नहीं ठहरता इसका भी भाव यही है कि मनुष्य मरजीवे की तरह संसार में अनासक्ति से काम करता हुआ भी हर समय परमात्मा का ध्यान वनाये रहे तभी देखते देखते कार्य सिद्ध हो सकता है।

१ अवार-देर, विलम्व। २ पथी-वटोही, राहगीर। ३ नसिया-नष्ट हुवा। ४ वीसरिया-भूला। ५ रीता-खाली। नीसरया-निकला। ६ चूची-स्तन का अग्रभाग। ७ पापै-पास। ८ चेलका-छोट वच्चा। ९ वैलाइ-भुलाने में डाल।

''वपनां'' मनका वहुत रंग, पल २ माहिं होइ ॥
एक रंग मैं रहैगा, सो जन विरला कोइ ॥३॥
सांकलि जड्यो न सीलकै, आंकुस नहीं अनंत ॥
हाथी हरिहाई[1] मिल्यौ, ''वपनां'' मन मैमंत[2] ॥४॥
मनसा डाकणि मन जरप, दौडावै दिन राति ॥
''वपनां'' कदै न ऊतरै, सांझ जिसी परिभाति[3] ॥५॥
पैंचौ तो आवै नहीं, जे छोडौ तो जाइ ॥
''वपनां'' मनकै पूंछडै, प्रांण टटीया[4] पाइ ॥६॥
पांच छिकारा[5] मृगइक, मृगी लार पचीस ॥
''वषनां'' वाडी राषिलै, कै पाजै[6] विसवा वीस[7] ॥७॥
मांहि रहै माहैं चरै, विडार्यो[8] नहीं जांहि ॥
जोई कूंपल ऊलहै[9], सोई कूंपल पांहि ॥८॥

---

[1] हरिहाई--हरा खाने की आदतवाला। [2] मैमत्त -मतवाला। [3] परिभात -प्रभात, सवेरा। [4] टटीया--चक्कर। [5] छिकारा- शिकारी। (ज्ञानेन्द्रियों के पांच विषय हैं वे ही यहा शिकारी हैं-मनरूपी एक मृग है। विषयों के उपभेद या पचीस प्रकृतियें है वे ही मृगी हैं) [6] षाजै-खायगा। [7] विसवावीस-निश्चय। [8] विडारयो -चमकाया। [9] ऊलहै-निकलती है।

मूल दुवारा[1] रोक करि, नो सेरी[2] रषवालि ॥
धनक चढाई ध्यान का, "वपनां" वांण संभालि ॥९॥
कुमति कसाइणीं परनिंद्या चूहडी, अदया ढेडणी रोस चण्डाल॥
या मंडली एकठी भई "वषनां" सगली रसोई विणसी[3]
दया बांमणी दूरि गई ॥१०॥
चौकौं दै अलगेरौ[4] आछैं, यां की मनमैं करै भरांति ॥
"वपनां" सो वाह्मण का वेटा, जीमैं नहीं इसां की पांति ॥११॥
"वपनां" मन मैलौ रह्यो, सुण्यों नहीं उपदेश ॥
धोइ धोइ तैं धोला कीया, पांणी माहैं केश ॥१२॥
तैंही तौ धौला कीया, पांणी माहैं न्हाइ ॥
अब काला क्यांहनैं[5] करै, बपनां कल्प[6] लगाइ ॥१३॥
औजौं[7] क्यों आशा रही, फेरि संवारयौ साज ॥
अब काला क्यांहनैं करै, बहु धौलां की लाज ॥१४॥
अठसठि पांणी धोइये, अठसठि तीरथ न्हाइ ॥
कहु "वपनां" मन मच्छकी, अजौं कौलांधि[8] न जाइ ॥१५॥
"वपनां" मैल विचारि करि, धौयौ नहीं गंवारि ॥

---

१ मूल दुवारा-अपानमार्ग । २ नोसेरी-कान, नाक, आंख, मुंह, मलमूत्रद्वार ये नो मार्ग । ३ विणसी—नष्ट हुई । ४ अलगेरो--दूर । ५ क्याहनैं- क्यों । ६ कल्प—खिजाब । ७ ओजौं=अब भी । ८कौलांधि=दुर्गन्ध ।

पांणी पापन उतरै, भावै सोसो डूभी[1] मारि ॥१६॥

॥ देवी माया को अंग ॥

*एती कौंण उलांडसी[2], वीचि रही पग रोपि ॥
“बषनां” विरला जाइगा, ररै ममैं कौं लोपि ॥१॥

॥ प्रमाणभूत श्री दादू बचन ॥

माया रूपी रामकौं, सब कोई धावै ॥
अलष आदि आनादि है, सो“दादू” गावै ॥
÷बषनां बलती[1] बालसी, +तामैं संसा नाहि ॥
जे काट्या ते ऊबर्या, रह्या सुबल से मांहि ॥२॥

१डूभी=डुबकी, पानी में गोता लगाना। २ उलांडसी-उल्लङ्घन करेगा।

*इस साषी में सगुण निर्गुण उपासना का भेद बनाया है महात्मा कहते हैं-यह ईश्वराश्रित रहनेवाली शुद्ध माया है उसका कौन उल्लङ्घन करेगा उससे पार कौन पहुचेगा। ररे ममे को लोपकर यानी सगुण राम की उपासना को छोडकर जो मायातीत निर्गुण ब्रह्मरूप राम हैं वहां कोई विरला ही महात्मा पहुचेगा अपने इस पक्ष के समर्थन में “बषनांजी” दादूजी महाराज की साषी का प्रमाण देते हैं ‘माया रूपी राम को’ इत्यादि।

÷बषनांजी कहते हैं कि माया चाहे शुद्ध हो या मलिन वह बन्धन का हेतु है जैसै अग्नि जलाये बिना नहीं रहती—वैसे ही माया जन्म मृत्यु रूप बन्धन से मुक्त नहीं होने देती। वन में अग्नि लगने पर जो वृक्ष काट लिये जाते हैं वे ही बच सकते हैं। वैसे ही उभय प्रकार की माया से जो बचकर निर्गुण उपासना में लगते हैं वे ही

॥ प्रमाणभूत श्री दादू वचन ॥

दादू केते जलि मूये, इस जोगी की आगि ॥
दादू दूरे वंचिये, जोगी के संग लागि ॥

॥ लौकिक माया को अंग ॥

अपणी माया [२]पारकी, पलक एक मैं होइ ॥
अगनि दहै [३]तसकर मुसै, देखत विनसै सोइ ॥१॥
※चिलकैं सबै संघारिया, माया मेल्हा बांधि ॥
पैसि छानिकै छेकलै, घोडा मार्‌या चांदि ॥२॥
+वेद विड़ा "वपनां" हम जांण्यौं, रस सिंगार दह डार्‌या ॥
थोहा कै दूध माछला माता, ज्यांह पीया ते मार्‌या ॥३॥

बन्धन मुक्त होते हैं। इसकी पुष्टि में भी 'दादू केते जलि मुये' यह साखी प्रमाण में दी है।

१ वलती=अग्नि। २ पारकी=दूसरेकी। ३ तसकर मुसै=चोर छीन ले।

※माया का प्रभाव उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते है कि जैसे चन्द्रमा की किरण घोडे के व्रण पर छप्पर के छोटे से छिद्र में से होकर पड जाय तो उससे उस व्रण में विप उत्पन्न होकर घोड़ा मर जाता है वैसे ही शुद्ध तथा मलिन किसी भी माया का अल्प सा संसर्ग भी मनुष्य के बन्धन का हेतु है—

+'वपनांजी' कहते हैं सकाम कर्म का उपदेश देनेवाले वेद के वचन हैं वे "विड़ा" गहन वन के समान है। शृंगाररस प्रधान जो

को अपणौं कौ पारके, रुल्या[1] मूवा[2] इहि भारि ॥
“वपनां” हरि सुमरयौ नहीं, सिरकी पोट[3] उतारि ॥४॥

॥ साधुपूजा माहात्म्य को अंग ॥

+पई सो तंदुल दोवटी, पेत धनां कौ जोइ ॥
“वषनां” पूज्यां साधनैं, लाभ घणौं ही होइ ॥१॥
सिर को चीर उतारि करि, द्रौपती पूज्यौ साध ॥
“वषना” नागी नां हुई, नृप कीनौ अपराध ॥२॥
साहिब देतौ देबौ कीजै, जौ देवै सौ पावै ॥

पौराणिक गाथायें हैं वह (दह बहुत बड़ा विस्तारवाला सरोवर है इससे पार होना कठिन है उसी तरह सकाम कर्म की उपासना और शृंगारप्रधान गाथाओं से उत्पन्न हुई भक्ति द्वारा मुक्ति पाना कठिन है। जैसे थूहर का दूध पीकर कोई मछली जीवित नहीं रह सकती वैसे ही मायायुक्त उपासना से भी कोई बन्धन में पड़े बिना नहीं रहता।

१ रुल्या=भटका। २ मूवा=मरा। ३ पोट=बोझ, भार।

+ इस साषी में प्रेम पूर्वक अल्प वस्तु से परमात्मा की पूजा करनेवाले महात्माओं का दृष्टान्त दिया है। पहिला— दादूजी को जब परमात्मा ने बूढन रूप हो उपदेश दिया तब दादूजी ने एक पैसे का पान लाकर भगवान को भेट किया। तदुक्त- सुदामाजी ने भगवान

चपनौं कहै दुहेली[1] बरियाँ[2], दीयौ आडौ आवै ॥३॥
*द्वादस कोड़ि जगि मैं जीम्यां, संखन बाज्यौ रह्यो षिसाइ[3] ॥
“बपनां” संत साध घरि जीम्यौं, संष दरूड़्यौ[4] मंगल गाइ ॥४॥

को चांवल भेट किये । दोवटी-रेजी कवीरजी ने रेजी भेट की थी और धना भक्त ने अपने खेत का अन्न भगवानके निमित्त समर्पण कर दिया था । “चपनाजी” कहते हैं , देखो प्रेमपूर्वक भगवान की थोडी सी वस्तु से सेवा करनेवालों को कैसा फल मिला है अतः प्रत्येक मनुष्य को भगवान की सेवा में लगना चाहिये ।

१ दुहेली–कठिन । २ बरियाँ–समय । ३ षिसाइ=अप्रसन्न, रूठा हुवा । ४ दरूड्यो=पूर्ण स्वर से बजा ।

*यह साषी एक कथानक से सम्बन्ध रखती है । इसमें परमात्मा के भक्तों का महत्व प्रदर्शित किया गया है । युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया, यज्ञ की पूर्ति होगई सबको यथायोग्य दक्षिणा पूजा देदी गई । यज्ञपूर्ति के अन्त में यज्ञ पूर्ण होगया इसकी परीक्षा के लिये शंख बजाया जाता है । राजसूय के अन्त में भी जब शंख बजाया गया तो उसमें से बिलकुल शब्द नहीं निकला । यह स्थिति देख सब पांडव दुखी हुये । भगवान कृष्ण को बुलाकर पूछा तो ज्ञात हुवा कि अभी कोई ऐसा महापुरुष यज्ञ में भोजन करने से रह गया है जिससे शंख नहीं बजा । वन में तलाशी की गई तो वाल्मीकि नाम का श्वपच भगवद् भक्त बाकी था उसको संमान पूर्वक लाकर भोजन कराया तब शंख पूर्ण ध्वनि से बजा । मतलब, जो परमात्मा के अनन्य भक्त हैं उनका महत्व सर्वोपरि है ।

॥ पीवपिछांण को अंग ॥

.जिहिं सौं प्रीत ऊपनी[१] थांकै[२], तिहिं को त्याग सही छै म्हाकै[३] ॥
गुर दादू म्हानै समझाया, गुणधारी[४] सब झूठ दिपाया ॥१॥

रक्त विंदसौं नीपनी[५], पांच तत्त की देह ।
"वपनां" जाम्यां मरिगया, त्यांह सूं किसौ सनेह ॥२॥

का यौं कास[६] कौ आंसिरौ, पतगास्यौं जरि जाइ ॥
"बषनां" गिरि कै आसिरै, अनन्त लाइ[७] टलि जाइ ॥३॥

ब्रह्मा विस्न महेस लौ, सब देष्या तेतीस[८] ॥
"बषना" एकहि *राम बिन, यह माया का +कीस ॥

॥ सांच चाणक्य को अंग ॥

"बषंनां" हमतौ कहैंगे, रोस करो मति कोइ ॥
माया अरु स्वामीपणौ, दोइ दोइ बात न होइ ॥१॥
"बषनां" हमतौ कहैंगे, रोस करौ मति कोइ ॥

---

१ ऊपनी=उत्पन्न हुई । २ थांकै=तुम्हारे । ३ म्हाकै=हमारे । ४ गुणधारी-नक़ली उपासक । ५ नीपनी उत्पन्न हुई । ६कास-कास जाति का घास । ७लाइ=अग्नि ज्वाला । ८तेतीस-तेतीस कोटि देवता ।

*राम बिन=निर्गुण अपरिछिन्न ब्रह्मरूप राम के बिना । + कीस=बन्दर, माया जैसे जैसे नचावे वसे ही नाचनेवाले ।

वैरागी कौं क्यौं वर्णौं, कनक कामणी दोइ ॥२॥
घर घरनी[१] को त्याग करि, औरां सेती ह्याव[२] ॥
*वैरागी सिर पालणौं, "वपनां" कौंण गांव का न्याव ॥३॥
तेल घीव गुड के टांगरै[३], कितनी माषी रोसी ॥
आप कमावै औरां वरजै, पुनि कहां तें होसी ॥४॥
वेला तेला आठैं चौदसि, वरत कियां कांई भांडै ॥
"वपनौं" कहै सरावगी सोई, तीन टांग ना मांडै ॥५॥
सोई सरावगी भैंसि न जाकै, भैंसि करै तौ वांधी राषै ॥
वा पींवै पांणी अणछांण्यौं, थांकौ धर्म सरावगी जाण्यौं ॥६॥
वपनौं कहै सरावगियां सेती, एक वीनती मानौं एती ॥
धरमी धर्म विचारतां, मति कौ मानौ रीस ॥
वतीसां माहैं दस रह्या, क्यूं षोया वाईस ॥७॥
आधी राति हाटड्यां षोलै, वीमथ्यौ नाज ताकडी तौलै ॥
तव क्यूं दया न ऊपनीं, ना क्यूं कीया विचार ॥
ये भीद सौं जांहिगा, वाईसां की लार ॥८॥
मिसर कहौ कि मिसरी कौ कुंजौ, विद्या वहुत वेद को पुंजौ ॥
और सवहीं वातां सांचौ, नैक चूकौ लंगोटी काचौ ॥९॥

---

[१] घरनी=स्त्री। [२] ह्याव=सम्बन्ध। [३] टांगरै-साथ।

* वपनांजी कहते है कि कहने को तो वैरागी शिर पर ठाकुर पूजा का पालना और उसके साथ साथ पूजा का सव सामान—

आहि[1] दीसै पोती की सरभरि[2], थे दादा कौ रूप ।
यांह् संगि भूंडा करम कराया, भलाहौ मिसर विद्या का रूप॥१

एक मूई[3] दूजी परिण मूई, तीजां करी पवारी ॥
लोगां नै भागौत सुणावै, आपण यों झप मारी[4] ॥११॥

औरांनैं तौ ज्ञांन सिपावै, आप वह्र[5] कै सारै ॥
"वपनां" कहै सुणौ रे संतौ, मिसर कातरा मारै ॥१२॥
"वपनां" ज्यांह मैं बुधि नहीं, यांह सूं मांडै काम ॥
ए मनिष नहीं ते जाणज्यौ, गदहा सूकर श्वान ॥१३॥
साधां की निंद्या करै, भक्ति दिढ़ावै नांहि ॥
ज्यांह यांकी संगति करी, ते वूडा जगमांहि ॥१४॥
किती अधौडी[6] चीकटी[7], कौमल हुई और ॥
मिस्र सीधडौ[8] तेलकौ, "वषनां "सदा कठौर ॥१५॥

॥ चाणक को अंग ॥

कहिं की साषी सबद कहीं का, भोग कहीं का लाया ॥

यह वैरागीपना और परिग्रह का साथ २ रहना कैसा न्याय है ।

[1] आहि-यह । [2] सरभरि–समान, सदृश । [3] मूई–मरगई । [4] झपमारी--विवश हो बुरा कर्म किया । [5] बह्र--स्त्री । [6] अधौडी–घृत रखने की हँडिया । [7] चीकटी--चिकनी । [8] सीधडौ-चमडे की कुप्पी ।

“वपनां” कहै वै साध नहीं रे, सात मूत का जाया ॥१॥
नैक[1] जनां कै चोटी चूंडा[2], डाढ़ी तुरक पिछानि ॥
दोऊं नहीं वाजींद कै, कहा दिपायौ आनि ॥२॥
माड़ासा[3] टटु[4] की पीठि चांदी पडी, छानि[5] कै छेकलै[6] वैर सारऱ्या ॥
कौतासी[7] किरणि दुसार[8] नीसरिगई, चौथिकैचांदि वाजींद मारऱ्या ३

॥ पेचर को अंग ॥

सींग अडावै आंटी करै, जलै आपणीं लाइ ॥
“वषनां” तिनसों क्या कथा, हरि का सुमिरण जाइ ॥१॥
उलझ्या वोलै सबद मैं, लागा रंग कुरंग ॥
“बपनां” तिनका संग कीयां, होइ भगत का भंग ॥२॥
सुलझ्या वोलै सवद मैं, भगति हेत कै भाइ ॥
तिसका पग की पांनहीं[9], “वपनां” सीस लगाइ ॥३॥

॥ करणीहीन बकता को अंग ॥

कागद में जरणा विचार, कागद मांहि ज्ञान उपगार ॥
कागद मैं तत मेल्या पाडि, कागद वस्ती पणि घटां[10] उजाडि[11] ॥१॥

---

१ नैक- कुछ, थोडे से । २ चूँडा—चूडा, शिखा । ३--माडासा—दुर्बल । ४ टटु -घोड़ा । ५ छांनि-छप्पर । ६ छेकला—छिद्र । ७ कौतासी—सामान्य सी । ८ दुसार -पार । ९ पांनही—जूती । १० घटां-उर अन्तर । ११ उजाडि—शून्य ।

कागद माहैं सब प्रसंग, कागद मैं सुमिरण को अंग ।।
कागद मांहे जोति अपार, घटमैं दीसै घोर अंधार ।।२।।
कागद माहैं ल्यौ का अंग, कागद मैं साधौं का संग ।।
सब लिपि मेल्या कागद मांहि, कागद मैं सो घट मैं नांहि ।।३।।
मैं साखी सगली सुणीं, विचारी मन मांहिं ।।
कागद मैं जरणा[1] लिखी, पणि घट मैं जरणा नांहिं ।।४।।
कागद मैं निरवैरता, सब साष्या की टेर ।।
पण हिरदा मैं वैरता, कोई बात कहण का फेर ।।५।।
सो बातां की एक है, सब साधौं की सापि ।।
गुर कागद मैं लिषि दियौ, सो "बपनां" हिरदै रापि ।।६।।

।। फोकट करणी को अंग ।।

'बपनां" लोग कौ चालिवौ, डागुलकी[2] सी दोर ।।
भौंण[3] कुवा परि नित चलै, अति ठौर की ठौर ।।१।।

।। स्वार्थी वकता को अंग ।।

"बषनां" आवै तब कहै, माली बारंवार ।।
मुहडा सेती राम राम, चित्त चडस की लार ।।१।।

---

[1] जरणा = सहनशीलता । [2] डागुल = छत । [3] भौंण = चाक ।

॥ भेप को अंग ॥

जलपोसौं[1] का आभरण, पहिरि किया टुक[2] कोड ॥
"वपनां" ग्रादी क्यूं करै, पतिव्रता की होड[3] ॥१॥
माला तिलक छापा वहु दीया, जो मनि मान्यां सोई कीया ॥
"वपनां" हिरदै राम न धार्‍या, तौ जांणि दिवाली वलद सिगार्‍या ॥२॥

रांडां मिलि मंगल कीयौ, मुणस[4] नहीं घर मांहि ॥
करि सिंगार हँस्ती फिरै, रुली[5] विगूचै[6] कांहि ॥३॥
कर माहैं माला फिरै, जीभ फिरै मुप मांहि ॥
मन फिरै ठाहर[7] घणी, "वपनां" सुमिरण नांहि ॥४॥
मन पवन अरु सुरति थिर, पंच सवद थिर होइ ॥
तौ "वपनां" उस पलककौं, वर्पन पूजै कोइ ॥५॥
❀ छह दर्शन हम वूझिया[8], जे होता वैरागि ॥

---

१ जल पोसौं = सीप-शंखों का। २ टुक = थोडासा। ३ होड=वरावरी, समानता। ४ मुणस = मनुष्य। ५ रुली = व्यर्थ भटकती हुई। ६ विगूचै = इधर उधर घूमें। ७ ठाहर = स्थान, जगह। ८ वूझिया = तलाशकिया।

❀ वपनाजी कहते है हमने छहों दर्शन साधुओं के छे प्रकार के मुख्य सम्प्रदाय (जगम, जोगी सेवडा, वौद्ध सन्यासी, शेप) तलाश करके देखे पर वासनारहित तीव्र साधनामय वैराग कहीं नहीं पाया। जैसे, लोकमें सामान्यतया धूवैं विनाकी आग कहीं नहीं मिलती

“वपनां” चूलै कौनके, धूवां पापै[1] आगि ॥६॥
डूंढा वालण वन दहण, यहुतौ आगि अनंत ॥
इहि कौ रांध्यौ ना छुवै, कुलवंती कौ कंत ॥७॥
जिहि अग्नि न धूवां नीसरै, तवौ न कालौ होइ ॥
कुलवंती “वपनौ” कहै, थारै सैंतो धोइ ॥८॥

॥ भेप विन साध को अंग ॥

ऊपरि तैं सुध[2] बुध सा दीसै, साधू जन संसारि ॥
“वषनां” बारैं[3] क्यूं नहीं, मांहि मका की ज्वारि ॥१॥
करण मोटौ सांऊ[4] सिरो, चेडेरू[5] भै नांहि ॥
साध मका की ज्वारि ज्यूं, “वपनां” निपना मांहि ॥ २ ॥
किसमिस देष बदामनैं, नालेरां ऊपरि जोइ ॥
“वषनां” बारैं क्यूं नहीं, माहैं अमृत होइ ॥ ३ ॥

उसी तरह वासना रूपी धूवें से रहित तीव्र तप रूप वैराग की अग्नि भी कहीं नहीं मिलती ।

[1] पाषै = पास, विना । पाषै शब्द मन के अंग की दूसरी सापी में-भी आया है–वहाँ प्रसग से उसका पास अर्थ ठीक जचता है यहाँ पाषै का अर्थ प्रसग से 'विना' सगत बैठता है ।

[2] सुधबुध=सीधासादा । [3] बारै=बाहिर, ऊपरके भागमें । [4] सांऊ-सीधा । [5] चेडेरु-पत्ती ।

मोलै भाइ[1] वस्त व्है मोली , तिहिनैं कौन दिसावर जावै ॥
“वषनां” वस्त भाव ऊपरि चाली, सो कोसां वैं आवै ॥ ४ ॥

हरि जन आवत देखि कर[2], ठरी हमारी देह ॥
*“वपनां” बलती ऊपरैं, दूधा वूठा मेह ॥ ५ ॥

“वपनां” अस्थन[3] धेन[4] कै, दोइ विलगा[5] धाइ ॥
जिसका था तिसकौं मिल्या, लागा था जिस भाइ ॥ ६ ॥

॥ प्रमाण में श्री दादू वचन ॥

“दादू” इक निर्गुण इक गुण मई ।

॥ सुसंगति को अंग ॥

ज्यौं तिल वास्या[6] फूल संगि, यौं हिरदै राम वसाइ ॥
“वपनां” त्यांह की वासना, जुग जाता नहिं जाइ ॥१॥

तिल फूल की वास[7] ले, दुह काठां विचैं पिड़ाइ ॥

---

[1] मोलैभाइ-सस्ते भाव । [2] ठरी-शीतल हुई । [3] अस्थन=स्तन। [4] धेन-गाय । [5] विलगा-लगा । [6] वास्या=सुगंधित हुवा । [7] वास-सुगन्ध ।

* जैसे जलती हुई अग्निपर दूध का मेह (वर्षा) वरसने से शीतलता छा जाती है वैसे ही शोक-भय-ईर्षा तथा अनन्त दुखों की अग्नि से जलते हुये हमारे शरीर स्वभावनिर्मल महात्माओं के आगमन से अत्यन्त शीतल होगये ।

यौं "वपना" मन पीड़िये, तौ कबहूं बाम न जाइ ॥२॥
जे घट विणसै साधका, तौ अमरबेलि इक थाइ ॥
जे कस्तूरी बीकयौं[1], तौ डाबै बास न जाइ ॥ ३ ॥
सोइ तेल दीवै बलै, सो फूलौं मैं मेल ॥
"वपनां" सगति थैं हूवा, तिल का तेल फुलेल ॥ ४ ॥
साध कंवल घट केवड़ा, मांहि बास रूपी राम ॥
तिलां सरीपा शिप मिल्या, तौ "वपनां" सारया काम ॥५।
पहिली कांइ न पीड़िया, किहि अरथ न आया ॥
'वपना' तेल न नीकलै, तिल ईली पाया ॥६॥
काल झाल[2]थैं हुवा निराला, कलि कालिमां न लागी ॥
*वपनौं कहै मैं तिरता देख्या, गुर दादू संग वैरागी ॥७॥
रूपराइ[3] जेती संगि रहिती तेती कौं गुण दीया ॥
"वपना" देषि बांवनै चंदनि, सब वन चदन कीया ॥८॥
नीचा कुल ऊँचा मता, त्यांह की संगति जीया ॥
"वषनां" देषि चंदन ढिग रहता, सब वन चंदन कीया ॥९।

---

[1] बीकयौं बिकजाय । [2] झाल-ज्वाला । [3] रूपराइ-वनस्पति ।

* इस साषी में माधव काणी वैरागी जो टोंक में हुये थे वे दादू जी महाराज के सत्सगी थे वे वैरागी होते हुये भी दादू जी महाराज के अनुयायी थे महाराज के उपदेश से ही उन्हें आत्मज्ञान हुवा था, उसी का सकेत किया गया है ।

जिहिं कुलि चंदन ऊपनौं[1], आनंदी वनराइ ॥
संगति का मंहिमा कीया, "वषनां" बास लगाइ॥१०॥

॥ कुसंगति कौ अंग ॥

वांस विड़ौ[2] जै ऊपनौं, तौ "बषनां" विरछ डराइ ॥
कुलषपण[3] ऊंचौ बध्यौ, दहसी सब बनराइ ॥१॥
डरपै वूंटै[4] वांसकै, भार अठारह[5] दूष ॥
"वपनां" वलिकरि वालसी, यहु कुसंगड़ौ का रूष ॥२॥
कुल ऊंचा गुण नीचा जामैं, तिहिं की संगति टाली ॥
'वपनां' देषि वांसकी करणी, रूंप राइ सब जाली ॥

॥ चित कपटी कौ अंग ॥

घणी वात करै लुड़पड़ी[6], वोलै वांणी मीठी ॥
"वपनां" कहै वघेरा की गति मनिषा मांहैं दीठी ॥१॥
सजन मिल्या दुरजन गलि लागि, वौंरै सीतल पाणि माहैं आगि ॥
अरि कड़िवौ सजन माहैं मीठो, "वषनां" भाव दहू को दीठौ ॥२॥

॥ निरपष को अंग ॥

जिसका साहिब तुरक न हींदू, पषा[7] दहूं थैं न्यारा ॥

---

१ ऊपनौं = पैदाहुवा । २ विडौ = समूह । ३ कुलषपण = वश का नाश करनेवाला । ४ वूंटै = पौंधे । ५ भार अठारह = सम्पूर्ण वनस्पति जगत । ६ लुडपडी = चिकणी चुपडी । ७ पषा = पक्षपात

"अपनां" बंदौं चौड़े धरिये, जले गडे संसारा ॥१॥
कहा भयौ जे गाडी रावल, कहा भयौ जे जाली ॥
दोऊं ठाहर दावा[1] वरते तार्थे चौड़े राली[2] ॥२॥
× जे गाडै तौ तुरक कहावै जे जाले ते हिन्दू ॥
"दादू" निरपष साहिब सुमिरै, समझै नहीं सो भौंदू ॥३॥
जंबुक क्या पाई अगनि का जालै माटी गडे सु कौण ॥
"दादू" मिले दयाल कौं, ज्यूं पाणी मे लूंण ॥४॥

॥ प्रमाण में श्री दादू वचन ॥

"दादू" जब दिल मिली दयाल सूं, तब अंतर कुछ नाहि ॥
ज्यूं पाला पाणी कूं मिल्या त्यूं हरि जन हरि मांहि ॥

॥ साकार सेवा तिरसकार कौ अंग ॥

मोटी देषि बहुत मन मान्यां दूहतां दूध न आवै ॥
"बषनां" बहिल[3] भैंसिनै मूरिष, क्यांहनैं पसर चरावै ॥१॥

॥ प्रामाण में श्री दादू वचन ॥

कामधेनु कै पटंतरै, करै काठकी गाइ ॥
"दादू" दूध दूझै नहीं, मूरख देइ वहाइ ॥

---

[1] दावा = हक । [2] राली = डालदी । [3] बहिल = बाँझ ।

× यह साषी बषना इस के आगे की साषी दादू जी के नाम से कही गई है पर हैं वे बषने जी की कही हुई दादूजी महाराज का इस विषय में क्या अभिमत है यह प्रगट करते हुये उनने लोग भी दोनों साखियों मे दादूजी महाराज का लगादिया है । दाह सस्कार चार

ब्रह्मा का वेद विष्णु की मूरति, पूजै सब संसारा ॥
महादेव की सेवा लागे, कहां है सिरजन हारा ॥

॥ सारग्राहीको अंग ॥

पै[1] पांणी भेला पीवैं, नहीं ज्ञान को अंस ॥
तजि पांणी पै नैं पीवै, "वषनां" साधू हंस॥१॥

※ कण कड़वी भेला[2] चरैं, आंधा विषई[3] प्राण ॥
वषनां पसु भरम्यां भषैं, सुनि भागौत पुरांण ॥२॥

पूर्वपक्ष

सबको कडवी पातहै चिन कडवी को नाहीं ॥
"वपना" क्यूं करि टालिये, कडव कणूकां मांहि ॥१॥

प्रकार के माने गये हैं जैसे जल दाग-अग्नि दाग, भूमि दाग-पवन दाग इन में दादू जी पवन दाग कोही ठीक मानते थे यही मत निरपप के अग की चार सापियों में अभिव्यक्त किया है।

※ वपनाजी कहतेहैं—पशु कण (अन्न, और कडवी (भूसा) को अज्ञान धेमभक्षो के कारण साथ साथ चरताहै खाताहै। इसीतरह अज्ञानी, विपयासक्ति से अन्धा हुवा प्राणी भी भागवतादि पुराण सुनकर भी सार असार का निर्णय किये विना पूजा, पाठ, उपासनादि नाना सत्कर्म करता हुवा भ्रम ही में उलझता रहता है।

१ पै = पय, दूध। २ भेला = साथ साथ। ३ विषई, विषयासक्त।

नोट—भागवतादि पुराणों का श्रवण और पूजा, पाठ, उपासनादि

उत्तर

देही का गुण वीसरै एक रंगी[१] रह जाइ ॥
“बपनां” सोई सन्तजन, कउव टालि कण पाइ ॥२॥

॥ प्रमाण श्रीदादू वचन ॥

पहिली न्यारा मन करै, पीछैं सहजि शरीर ॥
“दादू” हंस विचार सूं, न्यारा कीया नीर ॥
आपै आप प्रकासिया, निर्मल ज्ञान अनंत ॥
खीर नीर न्यारा कीया, “दादू” भजि भगवंत ॥
एकही कांनी जीवतां, दूजी मृतक होइ ॥
मन मचला[२] मनसा पांगुली “बपनां” विरला कोइ ॥४॥

॥ वेसास कौ अंग ॥

मात पिता कौ गमि नहीं, तहां पिवायौ पीर ॥
सो गुण थारा रामजी, “बपनै” लिख्या शरीर ॥१॥

सात्विक कर्मों का फल चित्त की शुद्धि का हेतु माना गया है।भागवतादि पुराणों में सत्यासत्य वस्तुओं का भी निरूपण किया है। पूजा-पाठ, उपासनादि कर्मों को किस प्रकार किस उद्देश्य से करना चाहिये यह भी शास्त्रों में वर्णित है पर विषय व्यावृत्त मन उस सत्य असत्य का ध्यान न कर केवल रूढि के निर्वाह मात्र की पूर्ति करता है इसी से ऐसे उपादेय आत्मज्ञान के हेतु कर्मों को करते हुये भी उसके फलसे वचित रह भ्रम ही में भ्रमित होता रहता है।

[१] एकरँगी = स्थिर दृष्टि-अचलध्यान। [२] मचला = स्थिर हुवा।

आसा वंधी न गाइये, करि लोगन की आस ॥
पूरणहारा पूरिसी, हरदै रापि वेसास ॥२॥
"वषनां" अण जांच्या भला, अहली[1] जीभ न हारि ॥
साहिव लाजै जाचतां[2], भगति न लाजां मारि ॥३॥

॥ श्रीदादू वचन ॥

अण वंछ्या आगैं पड़ै, पिरथ्या विचारिक पाइ ॥
दादू फिरै न तौड़ता, तरवर ताकि न जाइ ॥

॥ सम्रथाई को अंग

॥ प्रश्न ॥

काजी पंडित बूझिया, किन ज्वाब न दीया ॥
"वपनां" वरिया[3] कौंण थी, जब सवकुछ कीया ॥१॥

॥ उत्तर ॥

जिहिं वरियां यहु सब हुवा, सो हम किया विचार ॥
"वपनां" वरियां खुशी की करता सिरजन हार ॥२॥
"वपनां" गति अविगत्ति[4] की' क्यूं ही लपी न जाइ ॥
चंदा चंदौं के थहो[5], जब चंद गह्यौ थौराहि ॥३॥

---

[1] अहली = व्यर्थ। [2] जाचतां = याचना करते। मांगते। [3] वरियां = समय, काल। [4] अविगत्ति = दैव, परमेश्वर। [5] कैथहो–कहां था।

“वषनां” गति अविगत्ति की, क्यँही जाइ न चीन्ह ॥
थावरि[1] २ कौण थौ जिहिं, छाती पागो दीन्ह ॥४॥

॥ आदि शब्द निर्णय अंग ॥

॥ प्रश्न ॥

“वषनां” गुरकौं बूझि[2] लै, यहु कंचन कि कांच ॥
प्रथमे शब्द साहिब कह्या, सो झूठा कि साच ॥१॥

॥ उत्तर ॥

*फिरि लागो सो कंचन कहिये, नहीं सु कहिये काच ॥
“वषनां” नैं दादू कह्या, वह झूठ यहु सांच ॥२॥

॥ प्रश्न ॥

समझाइ कहौ २ गुर संसा[3] नांहि रहीला ॥
फिरि लागै थैं कंचन हूवा, पहिली क्यों काच कहीला ॥३॥

---

[1] थावरि–शनिश्चर । [2] बूझिलै–पूछलै । [3] संसा–सशय ।

* यह साषी पहिली साषी के उत्तर में कही गई है पहिली साषी में यह प्रश्न किया गया है कि कौन मनुष्य कचन (सत्य) है और कौन काच (झूठा) इसमें उसका उत्तर देते हैं कि जो मनुष्य विषय वासना से ससार सुख से फिर कर मुड़कर आत्मनिष्ठा में लग गया है वही कचन है उसीका जन्म सार्थक है जो ससार सुख से विरत नहीं हो उसीके प्रवाह में बहा चला जाय वह काच (मिथ्या) है— उसका अमूल्य जन्म काच की तरह व्यर्थ चला जाता है ।

॥ उत्तर में श्री दादू वचन ॥

ॐकार थैं ऊपजै, विनसै बहुत विकार ॥
भाव भगति लै थिर रहै, दादू आतमसार ॥

॥ प्रश्न ॥

इकलस इकरस साहिब कहिये को गुण व्यापै नांइ ॥
तिस साहिब कै कहो स्वामीजी माया थी किस ठाइ ॥४॥

॥ उत्तर ॥

वेद कतेव[1] साध सब बूझ्या करि २ जूवाजूवा ॥
"बपनां" नैं दादू यौं कहिया, साहिब तैं सब हूवा ॥५॥
"वपनां" तिल वैसंदरा[2] पेट वडौ परिमाण ॥
एक सबद सूं सबहूवा माया मांड मंडाण ॥६॥

॥ सूरातन को अंग ॥

"वपना" इहि व्यौपार मैं टोटा मनहु न आणि ॥
सिर साटै जै हरि मिलै तव लग सुहगा[3] जाणि ॥१॥
हरि रस मंहगा मोलकौ "वपनां" लियौ न जाइ ॥
तन मन जोबन शीश दे सोई पीवौ आइ ॥२॥

---

[1] कतेव—कुरान। [2] वैसंदरा = अग्नि। [3] सुहगा = थोडे मूल्य का-सस्ता।

ताती[१] सीली[२] सब सहै, सुख दुख शीतल घाम ॥
"वपनां" सो साचै मतै, गिर पडि कहिसी राम ॥३॥
※सुहागणि[३] सो पाइ थी, लूटि लूटि संसार ॥
वादां राणी छोकरी, कोई वली न लार[४] ॥४॥
×दुहागनि[५] नैं क्यूं नहीं, वेलां धान न लूण ॥
"वपना" चलती देपिनै, भली दहूं मैं कोण ॥५॥

---

१ ताती–गर्म, कुपित करनेवाली । २ सीली–ठंडी, शान्ति देने वाली । ३ सुहागणि–सौभाग्यवती, पतिप्रिया स्त्री । ४ लार–पीछे । ५ दुहागनि-पति से छोडी हुई स्त्री ।

※ इस तथा इससे आगे की साषी में नकली असली साधक का दृष्टान्त द्वारा भेद दिखाते हैं—एक राजा के दो राणिया है एक पर राजा का प्रेम विशेष है वह सुहागणि—सौभाग्यवती राजा के प्रेम के कारण अनन्त प्रकार के सुख भोगों को भोगती है । उसकी बांदी-तथा दासियां भी स्वामिभक्ति दिखलाती हुई नाना प्रकार के सुख भोगती है—पर अन्त समय में राजा के साथ एक भी सती नहीं होती ॥४॥

× दूसरी राणी दुहागणि है इससे राजा अप्रसन्न है—राजा ने इसको त्याग दिया है इसके पास न कोई बांदी है न कोई दासी है और तो क्या ? इसको समय पर धान अन्न) तथा लूण भी नहीं मिलता—पर अन्त समय में जब यह राजा के साथ सती होती है तो बतलाओ दोनों में कौन श्रेष्ठ है ॥५॥

+विन परचै परचा कहै, वोलै पंचौं मांहि ॥
"वपनां" वलि वाकी करै, सो वासण संतै नांहि ॥६॥

॥ काल को अंग ॥

जाकै सूरज तपै रसोई, पवन अंगना जु बुहारै ॥
नौ ग्रिह वंध्या पाइ, मीच कौं कुवै उसारै[1] ॥१॥
विह[2] जाकै दाणौं दलै, वंदि बांध्या तेतीस ॥
"वपनां" वैभी काल गिरासिया[3], जाके दस माथा भुज वीस ॥२॥
जाकै जल था जंघ संवाणां, सागर मथिया कर मेर मथांणां ॥
हाथां धरि २ परवत ल्याये, "वषनां" काल उसे नर षाये ॥३॥

॥ गर्भ गंजन को अंग ॥

॥ कुंडलिया ॥

मेरे तपि परताप देपि रवि करै रसोई ॥

---

१ उसार—उतारै। २ विह=विधना । ३गिरासिय—निगला,खाया।

+ यह सापी नकली साधक को लक्ष्य करके कही गई है । विन परचै=विना आत्मज्ञान के । 'परचा कहै' आत्मज्ञानी होने की वात कहै । 'वोलै पंचो मांहि' पर उसकी प्रवृत्ति और कार्य सव पांच विपयों की वासना युक्त होते हैं । वपनांजी कहते हैं कि 'वलि वाकी करै' जैसे नकली सती होने का ढोंग करती है पर जलती नहीं जैसे उसका लोक मे कोई महत्त्व नहीं उसी तरह उपरोक्त साधक भी सच्चा साधक नहीं है अतः महत्वहीन है ।

पवन वुहारै द्वार नौ ग्रिह आज्ञा मैं होई ॥
मीच कौं कुवै उसारि जम पैं पाणी भरवाऊँ ॥
वेद क्रम करि नास इन्द्रपुरि पंथ कराऊँ ॥
विह मेरे दांणौं दलै, वंदि वांध्या तेतीस ॥
"वपनां" सो ग्रबैं गल्या, जाके दस माथा भुज वीस ॥१॥

॥ सापी ॥

नौ ग्रह तेतीसौं पड्यो मेरी वंदि मे आइ ॥
"वपनां" माया गर्व सौं, देपत गयौ विलाइ ॥२॥
जिहि कै विह दांणौं दलै, कूवै मीच उसारि ॥
इसौ असुर जोधा[1] वडो, गयौ गर्व सौ हार ॥३॥
बैसंदरि धोवै लूगडा[2], सूरिज करै रसोइ ॥
"बषना" ताकी चितामें, अजहूं धूंवां होइ ॥४॥
परबत आण्यों[3] हाथ परि, सॅमद कियौ इक घूँट ॥
"बषना" इतनौं बल कियौ, पणि अंति सबै घट छूट ॥५॥
भरत, शत्रुघ्न, राम पुनि, दसरथ राणी दोइ ॥
"बषनां" बिनस्या गर्वसौं, औरां गिणैंस कोइ ॥६॥
वसुदेव पुनि देवकी, नद जसोदा संग ॥
बलिभद्र सो कृष्ण कौं, देखत होगयौ भंग ॥७॥

---

[1] जोधा-शूरवीर। [2] लूगडा— वस्त्र। [3] आण्यों—लाये।

हरनांकसि हिरनाछ व्है, कंस केस भूपाल ॥
“वपनां” अति का गर्वतैं, मारि गयौ जमकाल ॥८॥
कंपै काल पताल सब, जम भय शेष डराइ ॥
सिंघासणि वैठो गर्व तौ, “बपनां” गयौ विलाइ ॥९॥
लंका छाडि विलंकपरि, “वपनां” डाक्यौ[1] जाइ ॥
एक दाढ़ भूतां भता, गर्वै गयौ विलाइ ॥१०॥
सीतां राम वियोग नित, मिलिन कियौ विश्रांम ॥
सीता लंक उद्यानमैं, “वपना” बनमैं राम ॥११॥
कुंभकरण महिरावणां, जरासिंध सिसपाल ॥
“वपनां” ये पणि गर्वसौं, बिनसि गया ततकाल ॥१२॥
कैरू पांडु सारिपा[2], देता परदल मोड़ि ॥
“वपनां” वलकौं गर्व करि, अंति मुवा[3] सिर फोड़ि ॥१३॥
“वपनां” गारैं[4] गर्व कै, विनस्या छप्पन कोड़ि ॥
मेरी मेरी करिगया, आया नहीं वहोड़ि[5] ॥१४॥
|५| दिन द्वै दल वल जोड़ि कर, “वपनां” मन गर्वाइ ॥
कावा पैं गोपी सपै, अरजन गयौ लुटाइ ॥१५॥
पांच तत्तको पूतलो, कांई वाम्हण कांई ढेढ ॥

---

[1] डाक्यौ जाइ=फांदगया । [2] सारिपा=समान । मूवा=मर गये ।
[4] गारैं=कीचड़ में, दलदल में । [5] वहोडि=फिरकर ।

ऊतिम बाम्हण बॉणिया, ऊतिम हरि को थॉन ॥
तामे मध्यम नामदेव, जिनि गल्यो विप्रा को मान ॥२॥
अष्टादस व्याकरण वषॉणै औसे जीमण हार ॥
संप पचाइण बाजियो, वालमीक की बार ॥३॥
वै जालै वै गाडण लागै , दुहमैं झगडो येह ॥
अदग कबीरा राषियो, ताकी दगी न देह ॥४॥
ज्यॉ हरि ध्यायो त्यॉ फल पायो, निरफल रह्यो न कोइ ॥
बपना रमइयो गाइये, गायॉ या गति होइ ॥५॥

१३६

कॉयो डरछै रे घरबार को, ज्यांह कै हिरदै हरि को सुमिरण
* ताडरनहीं, लगार[1] को ॥टेर॥
कॉयो घर कॉयो वन मॉहै, यहु छै काम विचार को ॥
बैराग लियॉ की कोण वडाई, जे भार वहै संसार को ॥१॥
तन वैरागी मन घरबारी, दीठो[2] ज्ञान गॅवार को ॥
थोडी छोड़ घणेरी लागो, पसारो[3] सैं वार को ॥२॥
चरण चितारै[4] हिरदै धारै, गुर गमि ग्यॉन अपार को ॥

---

१ लगार--रत्ती । २ दीठो- देखा । ३ पसारो--फैलावा । ४ चितारै - यादकरे, स्मरणकरे ।

* यह पद्य एक घटनासे सम्बन्ध रखताहै । बषनाजी दादूजी महाराज के गृहस्थ शिष्यों में थे--एक वार महाराज के उन शिष्यों नें आलोचना की जो गृहस्थ नही थे--इन ने आपसमे यह चर्चा की कि दादू जी महाराज बषनाजी का भी वैसाही आदर करते हैं जैसा

तिहि नैं करमन लागै कोई, वो साहिब का दरवार को ॥३॥
सूवा पढावत गनिका तारी, जिहि कै वणज विकार को ॥
अजामेल से अधम उधारे, जिहि नांम लियो करतार को ॥४॥
घर मैं ही तैं नाम कवीरा, अरु रैदास चमार को ॥
घर मॉहै हरि को गुण गावे, वपना सिरजनहार को ॥५॥

(साषी)

वपना वाणी वरसणी, वरसै गहर गंभीर ॥
सूकानैं हरिया करै, गुरवाणी का नीर ॥१॥
वपना वाणी वरसणी, अमृत वरसण लाग ॥
वैणा पुणॉगा वोसरी, भीगा ज्यॉह सिर भाग ॥२॥

पद—१३८

वॉणी वरसै सवद सुहावे, कनरस[1] भरि २ हरिरस पावे ॥
हरि भगता, नें भावे ॥टेर॥
साध सीप संसार समंदा, तामै लिपतन थावे ॥
स्वॉति वूँद सूं हरिरस वरसै, मन मोती होइ आवे ॥१॥
रूँप विरप वावा की वाडी, केला भेला ढाई ॥

रज्जवजी सुन्दरदासजी आदि का यह उचित नहीं कारण गृहस्थ और त्यागी वैरागी समान कैसेहो सकते हैं--इसी चर्चापर बषने जी नें यह पद्य कहा है।

[1] कनरस--हरिकथा के सुनने का चाव = श्रवणको प्रियलगनेवालाशब्द ।

काया केलि में हरिरस वरसै, ह्वै कपूर ता मॉही ॥२॥
डूॅगर हरिया सरवर भरिया, नीर निवॉण[१] सरिया[२] ॥
फूली फूली पृथमी सगली, वावै आनद करिया ॥३॥
दादुर मोर ववीहा[३] वोलै, और जलचरा जीवे ॥
वषना वॉणी हरि रस वरसै, साध सवाया पीवे ॥४॥

१३६

(राग वसत)

मेरे मन के मॉने[४] मोहनलाल, तोहि मिलन का मोहि
वहुत ख्याल ॥टेर॥
भँवर भवै[४] वन रवै[५] नॉहि, वाकी निरत[६] निवासे[७] कॅवल माहि ॥
यों मेरा मन लागा तोहि, नैकक मिलने दीजै मोहि ॥१॥
कुंज चितारे धरणी छेव[८], चित नित रावै करे सेव ॥
यों मेरा मन चरन जाइ, लालचि लागो रहै लुभाइ ॥२॥
सीप समंदा जल मझारि, वा जल सों नांही हेत प्यार ॥
स्वाति वूॅद की रटै प्यास, यों मेरा मन हरि की आस ॥३॥
चात्रग कै चित वहुत चाइ, रटतो डोलै तिस न जाइ ॥

---

१ निवाणा—निचाई की जगह २ सरिया - सरक गया, भरगया। ३ ववीहा = पपीहा। ४ मानें = स्वीकारकियेहुये, चाहे हुये। ५ भवै - घूमै, भ्रमण करे। ६ रवै नाँहि - - रहेनहीं। ७ निरत - - सुरति, ध्यान। ८ निवासे = रहे। ९ छेव = किनारे, अन्तमें।

यों वषना वोलै वार वार, मोहि दरस दिषावो एक वार ॥४॥

१४०

(राग बिलावल)

रांम भजनतैं भलो भयो, अठसिधि नवनिधि द्वारे आई
घर को सव दालिद्र गयो ॥टेर॥
एक समै धू षेलत होते, राजा अपणी गोद लियो ॥
सर्व सुहागणि गर्व कियो अति. वांह पकडि धू उठाइ दियो ॥२॥
रोवत धू माता पै आये, मात कहै हरि नांहि भज्यो ॥
सवद सुणत धू वन कूं चाले, सव माया को मोह तज्यो ॥२॥
आगैं जात मिले रिषि नारद, ज्ञान ध्यान उपदेस दयो ॥
गुर को सवद हिरदामें राष्यो, जवतैं मधुवन जाइ छयो ॥३॥
ध्यान धरै धू सुमिरण लागे, अंतरजांमी मानि लियो ॥
लोक परलोक दोऊं तिनि पाये, राज दियो धू अटल कियो ॥४॥
सुत को त्रास दई हरनांकसि, जन प्रहलाद सूं वैर ठयो[1] ॥
मनसा वाचा हरि हरि भाषे, अपणैं वैर सूं आप हयो[2] ॥५॥
घन घोरे वरषा रुति आई, जो वरष्यो सो मांहि चयो[3] ॥
नामदेव कै वैठियो वीठल, छानि छवनि[4] को आप ठयो ॥६॥
वेचन गयो गजी गुदरी में, महापुरिष कहूं वैठि रह्यो ॥

---

१ ठयो–ठनगया। २ हयो—हन्यो, मारागया। ३ चयो चूगया, रसगया, पैरगया,। ४ छानछवनिको–छान छानेवाला।

जन कबीर कै बालदि आई, भांति भांति को नाज नयो ॥७॥
छान छपरवा सरकी टाटी, ताको पलटर महल भयो ॥
गरीबदास से गरीब निवाजे, दादू को दीदार दयो ॥८॥
भजन उजागर सुख को सागर, जिनही भज्यो तिनि बहुत लह्यो ॥
"बषना" बहुत गरीब निवाजे, तार्थैं गरीब निवाज कह्यो ॥९॥

१४१

रे चित चिंता जिनि करे, हरि चिंता करसी ॥
भांडा घडि मुहडा[५] किया, सोई भलैं[६] भरसी ॥टेर॥
जठर अगनि मैं जीव की, जिनि करी संभाला ॥
अब नाऊँ नांहि करे, ओ ? दीन दयाला ॥१॥
आगाही आगा लगै, यों करता आया ॥
+भुवंग पिटारां मांहि था' भष मारग पाया ॥२॥
षूहण[७] पपी[८] अठारहूँ' भारथ बहु तेरा ॥

---

१ मुहडा–मुँह, मुख । २ भलैं–फिर, पुनः । ३ पूहण--अक्षौहणि सेना । ४ पपी--नष्टहुई । ह्वै होकर ।

+ इसपंक्ति मे परमात्मा की अद्भुत अनुकम्पा का द्रष्टान्त दिखाया है। एक पिटारे में साँप बन्ध था सपेरा उस से खेल कर उदर भरने की सोच रहाथा—ईश्वरानुकम्पा से एक चूहा आया उसनें समझा कि इस पिटारे में कोई अच्छा भक्ष्यहै, उसने पिटारे को काट क सुराख बना दिया सुराख होते ही सर्प नें चूहे को खाया और पिटारे से निकल गया ऐसे आहार और छुटकारा दोनों प्राप्त हो गये ।

अंडा राष्या घंट दे, सो साहिव मेरा ॥३॥
सुंजाम तिहुँ लोक का, ताकै करि छाँड्या ॥
सो मांहे छिटकाइसी' "वषनैं" मुष मांड्या ॥४॥

१४२

को काहू कै आसिरै. काहू का [१]ह्वै ह्वै रहिया ॥
मेरे केवल रांमजी. मैं सरणा गहिया ॥टेर॥
को तीरथ को व्रत कै, को जप तप साजे ॥
मेरे केवल रांमजी, यहु व्रत न भाजे ॥१॥
एक मूनि गहि नागा रहे, एक दूधा धारी ॥
मेरे केवल रांमजी, ए [२]पैज हमारी ॥२॥
कोई राजा कोई परजा, कोई मेरा तेरा ॥
मेरे केवल रांमजी, आगैं आगेरा ॥३॥
काहू कै वल कुल जातिको, कोई पढ़िया जोसी ॥
वषनां कै केवल रांमजी, तूं करे सु होसी ॥

१४३

मेरे लालन हो, दरस द्यो क्यूं नांही ॥
जैसे जल विन मीन तलपै, यूं हूं तेरे तांई ॥टेर॥
विन देष्यूं तन [३]तालावेली, विरहनि बारहमासी ॥
दिल मेरी का दरद पियारे, तुम्ह मिलियां तैं जासी ॥१॥

---

[१] ह्वै-होकर। [२] पैज-कौल, इरादा। [३] तालावेली-घबराहट, विकलता।

रैणि निरासी होइ छै मासी, तारा गिणत विहासी ॥
दिन विरहनि कूँ बाट तुम्हारी, सदा उडीकत[1] जासी ॥२॥
जल थल देषूँ परवत पेषूँ, वन वन फिरौं उदासी ॥
बूझों कोई उहां थै आया, ठावा[2] मोहि बतासी ॥३॥
फिरि फिरि सबै सयाने[3] बूझै, हौं तो आस पियासी ॥
वपनां कहै कहो क्यूँ नांही, कब साहिब घर आसी ॥४॥

१४४

जाहि जल्या मन जजालि विलूंध्या[4],
धंधे[5] मे केवल रांम न सूझ्या ॥टेग॥
लेपा चेपा करत बिहावे, लेवा देवा सो सरौं आवे ॥
+योंही करता जनम वदीतो, भर्‌यौ आयो होइ चाल्यो रीतो ॥१॥
फिरि फिरि कीया मेरा मेरी, तामे रती कछू नहिं तेरी ॥
तिन सों लागि जनम यों हार्‌यो, वेला[6] थकी न पथ संवार्‌यो ॥२॥

---

१ उडीकत—इन्तजार करते, राह देखते। २ ठावा—ठीक, यथार्थ। ३ सयाने—मन्त्र तन्त्र के ज्ञाता, सिद्ध। ४ विलूध्या—उलझा हुवा, व्यस्त। ५ धधे में—सांसारिक कार्य में। ६ वेलाथाकी—समय चला गया, आयु समाप्त होगई।

+इसी तरह करते २ यानी तेरी मेरी करते हुये, धन, माया कुटुम्ब की व्यवस्था करते हुये, अब एक ओर बैठ परमात्मा का

घटि गई ताका भेद न पाया, मूरिष चेत बुढापा आया ॥
बषनां बहुत कहा ध्रिग जीया, केसो भज्या न सुकृत कीया ॥३॥

१४५

*प्रांणीडा पांणी पायो लोडै, तो इह मति साधी रे ॥
मान सरोवर फूटेगो रे, जे मनसा पालि न बांधी रे ॥टेर॥
पहली बॉधी पीछै न छूटै, बाँध्या ही बँध आवे रे ॥
अब अैसी बॉधी मन मेरा, तामैं पाणी बहुत समावे रे ॥१॥
पॉच पचीस दसों दिसि जाता, ए सब मॉहै लीजै रे ॥
नोसै नदी नवासी नाला, उलटि अपूठा दीजै रे ॥२॥
तीनि ताल तो लग निज ऊँडो, चौथे सेझो कीजै रे ॥

स्मरण करेंगे ऐसे संकल्प करते हुये ही जन्म समाप्त होगया। आया तबतो भरा हुआ था अर्थात् मनुष्य जन्म धारण किया तब तो सारा समय हाथ में था चाहता तो उससे बहुत कुछ लाभ उठाया जाता पर अब तो चलने का समय आगया कोई सुकृत किया नहीं परमात्मा का ध्यान या लोकसेवा कुछ भी न कर सका अतः रीता होकर यानी बिना किसी प्रकार की उत्तम कमाई के खाली ही चल दिया।

*अरे प्राणी! जीवन रूपी जल हिलोरे लेरहाहै इस को बहने से कैसे बचाया जाय इस का समय रहते विचार करो। मनुष्य जन्म रूपी मानसरोवर उमडते हुये बिषयों की ओर प्रबल वेग से चलायमान जीवन जलसे फूट जायगा--इस को सुरक्षित रखने के लिये 'मनसा' एकाग्र वृत्ति की पहिले ही से पाल दीवार बाँधदेनी चाहिये-तभी यह रुक सकेगा अन्यथा जीवन जल बह जायगा और मानसरोवर मनुष्य जन्म टूट जायगा नष्टहो जायगा।

मुकति घाट सुरति पणिहारी, तहाँ हरि जल कलस
भरीजै रे ॥३॥
वा सरवर को पाणी आणी, वै सर यो सर लीजै रे ॥
हरि रस पैसि विचाले वपना, वेगो वेगो पीजै रे ॥४॥

१४६

(राग ललित)

आनंद बधावो बाजै, आतम केवल राम विराजै ॥टेर॥
अगर चंदन आँगनो लिपाऊँ, मोतियन चौक पुराऊँ ॥
प्रेम कलस सिर ऊपरि धारों, हरि आया सामहीं पधारों ॥१॥
पांच सहेली मंगल गावो, तन मन वारि वारि दरसन पावो ॥
गोवल गुडी भयो उछाह, नारी नेह घरि आवो नाह ॥२॥
आज म्हारै वस्ती आज म्हारै वासा, कहै वपनों हरि पुरवी
आसा ॥३॥

१४७

(राग कान्हेरो)

दयाल नें चोधता[1], म्हारी भूपडली भागी ॥
अठसिधि नवनिधि नांषी पाछी, चरन कँवल अनुरागी ॥टेर॥
ब्रह्मा विष्णु महेसुर सुरनर, तपता तीन्यूँ आगी ॥
गुर दादू प्रसाद वषनैं, सबद सुनत माया त्यागी ॥१॥

---

[1] चोधता—चौ नजर होता, अवलोकन करते ।

१४८

भाव भजन की भाठी आगे, रांम रसायन पीवन लागे ।।टेर।।
देहरी कलाली तूं जिनि नाटै, हरिरस तो है तनकै साटै[1] ।।
एक पियाला हमकों दीया, साथी सह मतिवाला कीया ।।१।।
सद मतिवाले साध हमारे, तन मन कापड गहणैं[2] मारे ।।
सार सुधारस हिरदै धारे, हरि रस पीवे पिचका[3] डारे ।।२।।
पीवे सदा पुमार[4] न भागे, ल्यावही ल्याव सदा ल्यो लागै ।।
नाचै गावे हरि रस राते, "बपना" दादूपंथी माते ।।२।।

१४९

(राग भिभास)

गाइये रामइयो दातार ।।
सब सुष आपै[5] रोर[6] कांपै, निरधारां आधार ।।टेर।।

---

१ साटै=बदले, पलटे, एवज में । २ गहणे मारें—गिरवी रखे, (भावार्थ हरिरस प्राप्तिके लिए तन, मन, धन सबको समर्पण करदे । ३ पिचका डारे—नीरस भागका परित्याग करदे। (भावार्थ पिचका डारे से यहा यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि जैसे ईख, अनार, सन्तरे आदि रसवाली वस्तुओं से रस गृहण कर शेष नीरस भाग का परित्याग कर दिया जाता है वैसे ही महात्मा हरिरसका पान करते हुये संसारी सुख भोगों को नीरस समझकर त्याग देते हैं इसी को 'पिचका डारें' इस शब्द से प्रगट किया है । ४ पुमार– नसे की तेजी का शेषांश, चाह, प्यास ।

५ आपै–प्रदान करै । ६ रोर–रौरवनर्क, भयंकर पाप ।कांपै–काटै ।

नारद सारद द्वारे गावे, कीरति करै कै वार ॥
नाथ तूँ अनाथ वन्धू, दालिद्र भंजनहार ॥१॥
अर्पे अमरपद च्यारि पदारथ, देत न लावे वार ॥
मैं अस करिनें गाइयो, कमला नों भरतार ॥२॥

दूझै सदा भगति के होझै[1], पंडित नांहि धार ॥
भगति भूरि दान आपै, मुकति पाडी लार ॥३॥
पीलीपहु[2] आराधियो, म्हारा समरथ सिरजनहार ॥
“वपना” दरवार पहाऊ[3] वोले, वासन्यों[4] करतार ॥४॥

१५०

तीधोधो भाई तीधो धो, चिते परै तो तीधो धो ॥टेर॥
सुधपरै तो तीधोधो, दुहुँ पवाडा[5] तीधोधो ॥
×ज्यांह कै नाहीं त्यांह नै रोज रुवावे, छै तो वहुत पचावे ॥

---

१ होझै होजमें, होज़ा, लघु सरोवर (भावार्थ भक्तिरुपी वर्त्तन में। २ पीलीपहु–पीले बादल, प्रभातवेला ब्राह्ममुहूर्त । ३ पहाऊ–प्रहरी, प्रहर रात्रि रहने पर वोलने वाला। ४ वासन्यो -बसने वाला। ५पवाडा= पसवाडा, दोनो पार्श्व भाग ।

×माया जिन के पास नही है वे उस की प्राप्ति के लिये नाना प्रकार के कष्ट उठाते हैं उन्हे इस तरह रुलाती है । जिनके पास माया है--वे उसकी रक्षा के लिये तथा वृद्धि व स्थिरता के लिये विविध प्रकार के यत्न कर कष्ट उठाते है–ऐसे ‘होने’ ‘न होने’ दोनो तरह से माया ससार को विविधि नाच नचाती है अत इससे बचें वे ही प्रशसनीय हैं अन्यथा दोनों ठीक हैं एकसे हैं।

संपति विपति दोऊँ तीधोधो, इँहि विधि नाच नचावे ॥१॥
एका कै आगे द्वै निसरी, सो संगि लागा जावे ॥
एकां कै वासै वसि चाली, तिन कों चित्त लगावे ॥२॥
जे राची[1] तो तीधोधो, विरची[2] तौभी तीधोधो[3] ॥
"वपना" बहुत नचायाआगै, जेउबरथा तो कोई को ॥३॥

१२१

सोई निरधन, जाकै रामधननांहीं, रामनिधिताकै निधि घर मांही ॥टेर॥
नांणा नांव अमर संसारी, जिनि लीया ते उतरे पारि ॥
चौर न लागै मूसै न कोई, लीया थैं लाभ घणाही होई॥१॥
परचतां पातां औड[4] न आवे, सांच्या च्यारि पदारथ पावे ॥
आगे यहु धन जिन कै हूवा, काल दुकालां नांहीं मूवा ॥२॥
दूजा धन देपतां विलाई, राम अषै[5] धन कदे न जाई ॥
चित चरवा भरि म्हेल्या पाटि[6],हिरदै राष्या दिपै[7] लिलाटि॥३॥
सो वोहरा[8] वोहरा में कहिये, जिहि घटि रांम पदारथ लहिये ॥

---

[1] राची- हिल मिल गईं, प्रसन्नहुईं। [2] विराची–अप्रसन्न होकर दूर हो गईं : [3] तीधोधौ–इसशब्दका ठीक पर्याय तो प्रतीत होता नहीं सम्बन्ध से इसका प्रयोग 'ठीकहै' इस अर्थ में प्रयुक्त, हुआ प्रतीत होता है। [4] ओड -अन्त। [5] अषै=अक्षय। [6] पाटि=वन्धकर, मून्दकर। [7] दिपै =चमकै। [8] वोहरा=कर्ज देनेवाला साहूकार।

आदि अंतिलों परचै पाइ, "वपना" कै रांमधन विनसि न
जाइ ।।४।।

१५२

पकडि पकडि मन को बैठाइ, इहि विधि हरि कै सुमिरण
लाइ ।।टेर।।

X मन दौडे देहीं बैसांणी, आसण इसा न होइ रे प्राणी ।।
मन फोरा[1] देही पांगुली[2], भो सागर तिरवा की रली[3] ।।१।।
जब लग मन बैसे नहिं ठाइ[×], तौ लग तिल भरि तिरयां न
जाइ ।।
मन जाते का करो गरासा[5], "वपना"सतगुर कह्या संदेसा ।।२।।

---

१ फोरा = हल्का, लघु । २ पागुली = पगु, असक्त। ३ रली = चाह, किसी बात का मन में आना । ४ ठाइ = जगह, स्वस्थान पर । ५ गरासा = ग्रास, ग्रहण पकडना ।

+ मन नाना प्रकार के सकल्पों में सलग्नहै, शरीर आमन पर बैठा हुवा है माला या पुस्तक हाथमें है ऐसे आसण से ऐसे वैठने से कोई लाभ नहीं है,मतलब मन की,स्थिरताके विना केवल विश्वासके लिये किये जाने वाले पूजा, पाठ, माला का जप सब निरर्थक है उन से दिखावे को छोड और कोई वास्तविक फल नहीं है जब तक मन स्थिर नहीं होता तबतक इन कर्मोंसे ससार सागर पार नहीं किया जा सकता ।

गावडी राषो हरि हावडी[1] करती, वरजो राति पसर ऊछरती
॥टेर॥
अह निस षेत पराया षाइ, नीसरि जाइ बडी हरिहाइ ॥
वाछा वाछी लीया संगि धावे, मांहै सांड दडूकतो आवे ॥१॥
जे न्यूँजो[2] तो न्याणों तोडै, लातां मारि दुहावणो[3] फोडै ॥
ठींगें[4] मारै सो पसवावे[5], षूँटै बांधी घेन दुहावे ॥२॥
दूध घणा दे भूषां मरती, जांण मति देहु जठै पहली चरती ॥
घेरि घारि "बपनो" घर आंणै, नीसरि जाइ तो परमेसुर
जांणै ॥३॥

॥ साषी ॥

षेंचो तो आवे नहीं, जे छोडो तो जाइ ॥
"बपना" मनसा पूँछडै, प्राण टटीवा षाइ ॥१॥

१५३

पद

पहिले व्यांइति व्याई गाई, कोण दुहै कोण मेलण जाई॥टेर॥

---

१ हरि हावडी = हरा चरने की आदत वाली (भावार्थ) विषय भोगने की आदतवाली वासना। २ न्यूजो = दूध निकालने के समय गाय के पीछे के पैरों को रस्सी से बाधते हैं इसे मार वाडी भाषामें 'न्यूजो' कहते हैं। न्याणो = न्यूज ने की रस्सी। ३ दुहावणि = दूध निकालने का पात्र। ४ ठींगैमारे = शिर हिलावे। ५ पसवावे (पावसाना) दूध देने के योग्य बनाना।

लातां मारे बांटो पाइ, जाका वाछा बडी बलाइ ॥
काजल पीपल बरण अबरणी, तीनि लोक में फिरि फिरि चरणीं ॥१॥
बनि बनि फिरै समंदि जल पीवे, धरणि गगन मे पल फिरि आवे ॥
अमृत सरवे भूखां मरती, धाई फिरै मछरका[1] करती ॥२॥
घेरि घेरि के करूँ उपाइ, तो मारगि छाडि कुमारगि जाइ ॥

दोहा

दूध की न मूत की, गाइ कहै सब कोइ ॥
ऐसी गाइ घर बारणे, वैरी कै मति होइ ॥
दूजे व्यांइत व्याई गाई, तिहि नैं गूजर दुहिवा जाई ॥
सावण व्यावे हाथ न आवे, तिहिं का मछर कोंण उडावे ॥४॥
X ले ले ठींगा दहूँ दहोडे[2], चरवा तै मन रतीन मोडे ॥

---

[1] मछरका करती=बेफिक्र घूमती, नाचती। [2] दहूँ दहोडे--दोनोंओर।

+इस पद्यमें मानसिक वृत्ति को गाय का रूपक देकर वर्णन किया है।

लात मारनेवाली गाय जैसे दूध देनेके समय दोनो ओर शिर घुमा२ कर दूध दोहनेवाले को नजदीक नहीं आने देती। खाने के समय सबसे आगे रहती है। इसी प्रकार विषयरत वृत्ति है यह परमात्मा के स्मरण के समय तो मन को इधर उधर दौडाकर चंचल कर देती है, परमात्मा के नाम रूपी दूध को हाथ नहीं लगने देती। खाने में अर्थात् विषय भोग में लगने पर उससे कभी तृप्त नहीं होती। वृत्ति रूपी गाय ऐसी 'घाट' है बदमाश है कि दुहाने के

षॉट[१] इसी छींका का फोडे तिहिने वषना दुहिवा लोडे ॥५॥
चंचल चपल चहॅू दिसि दोडे, मगरे[२] जाती कौंण वहोडे ॥
वागिन मिलै हिली हरिहाई, भागी फिर नहीं ठहराई ॥६॥

दो०

वॉटो घॅू नीरों घणा, देषी घणा चराइ ॥
माथै कीया पॅूछडा, या पहली षेतॉ जाइ ॥१॥

तीजै व्यॉइत अजहॅू व्याई, दूध घणा पण हाथि न आई ॥
रात्यौं[३] दिहॅू चराई प्याई, दुहौं कहा डोलै मछराई ॥७॥
इस का थणॉ हाथ को लावे, तो साम्ही ह्व मारण कॅू धावे ॥
वछडा आठौं पहर पवावे, थण में लिसक[४] रहण नहिं पावे ॥८॥
रहै न हटकी[५] रामें[६] जावे, पाली परक[७] न वैठक आवे ॥

(परमात्मा के स्मरण के समय) समय हाथ के दुहारे को ही नहीं छींके मे रखे हुये दुहारे को भी फोड देती है—अर्थात् उस समय ही मन को चंचल कर ईश्वराराधन में नहीं लगने देती सो वात नहीं—आगे भी मन को स्थिर होने मे वाधा पहॅुचाती रहती है। ऐसी गाय को यानी इस प्रकार की चंचल मनोवृत्ति को 'वपनां' दूहना चाहता है, आत्मनिष्ठ करना चाहता है।

१ पांट=वुरी, वदमाश, लवार। २ मगरे—जंगल। ३ रात्यौं दिहॅू—रातदिन। ४ लिसक—रंच, थोडासा भी। ५ हटकी—मना कीहुई रोकी। ६ रामें-जंगल। ७पाली परक—वाडे, पशुशाला।

जड जाणै सोई सेवग तेरा, वपना वोले वो गुर मेरा ॥

१५६

*तिहि तीरथ मेरा मन न्हावे, जिहि तीग्थ का थाव न आवे
॥टेर॥

सो वाहरि न भीतर नेडा न दूरि, सो जल आवे सहज हलूरि[१] ॥
मुक्ता भूलि रह्या सर पूरि, तिहिं सर न्हावे पंचू दूरि ॥१॥
अडसठ तीरथ तिन थैं भला, तिस तीरथ मेरा मन चला ॥
तिन कै न्हाये निरमल होइ, औसा तीरथ और न कोइ ॥२।
सुपसागर तीरथ कानांउ, तिहि सागर मे डूवी पाउ ॥

---

[१] सहजहलूरि=स्वाभाविक हिलोर देता हुवा।

*मेरा मन आत्म सरोवर तीर्थ में नाहाना चाहता है। कैसा है वह आत्म सरोवर तीर्थ, जिसकी कभी थाघ गहराई मालुम नही होती गहराई उसी वस्तु की ज्ञात होती है जिसका आदि अन्तहो आत्म चैतन्य आदि अन्त से रहित है अत उसकी गहराई ज्ञात नहीं हो सकती। वह सरोवर नवाहिर है न केवल समीप न भीतर ही है न केवल दूरही है अर्थात् सब जगह एकसा व्यापक है-आत्मा किसी एकही स्थान में अवरुद्ध नहीं वह सर्वत्र समानरूप से रहता है समष्टि चेतन का यही रूप है।

यह आत्म सरोवर भर पूर भरा हुवा हिलोरे लेरहा है पाचो विषय की भावना का परित्याग करने ही से इस सरोवर में न्हाया जा सकता हैं। इस सरोवर में नहाने ही से मनुष्य निर्मल हो सकता है'वषनाजी' कहते है मनुष्य को पुनीत करने वाला ऐसा कोई अन्य सरोवर नहीं है

आठ पहर ताही में रहूँ, अैसा तीरथ और न कहूँ ॥३॥
अवरण वरण वहुत विसतार, ता का सूझै वार न पार ॥
राँम कलस ता माँहू भरे, तहाँ "वपना" साँपडि[1] सेवा करे ॥४॥

राग काफी

१५७

साहिव सुलतान तूँही, मैं गुलाम तेरा ॥
धणी तूँ धणियाप[2] कीजै, मिहरवान मेरा ॥टेर॥
आदि अंत तूँ ही जाणैं, पाना जाद तुम्हारा ॥
लाल वुवा लौंडी का जाया, हरि वोला हुसियारा ॥१॥
सादिया वैहल वै मीराँ, अैसी भाँति कमाऊँ ॥
तुम्हारे दरवार विना, दूरि रह्या दुप पाऊँ ॥२॥
वदे की अरदासि[3] याही, साहिव सुणि लीजै ॥
वपनो वकसीस[4] पावे, पाऊँ लागण दीजै ॥३॥

। राग धना पनी ।

१५८

माया वादली रे, तामैं हरि चंदा दीसै नाँहि ॥
तिहि कारण दुप पाइ है, कमोदनि जल माँहि ॥टेर॥
माया का वादल मिल्या, चंद छिप्या ता माँहि ॥

---

[1] साँपडि = स्नानकर । [2] धणियाप = स्वामीपना, मालकी [3] अरदासि = प्रार्थना । [4] वकसीस = इनाम, पारितोपक ।

मोह् अंधारा ह्वै रह्या, तायैं सूझै नाँहि ॥१॥
ए वादल वहु भाँति का, पार न पावे कोइ ॥
नाँ वादल आघापिसै[1], ना रैंणि उजाला होइ ॥२॥
+घात[2] घटा विन ऊलरै, गाजै नित अहंकार ॥
तन तृष्णा दिन की पिवे, यों भीगा संसार ॥३॥
रन मैं वन मैं घर महैं, घूमि रही सब ठाँइ ॥
वडा वडा गैवर[3] गल्या, माया कादो[4] माँहि ॥४॥
ज्ञान पवन जे संचरे, तो वादल देइ उडाइ ॥
"वपना" कँवल कमोदनी, विगसै चंद तहाँ दिठे जाइ ॥५॥

१५६

भो जल क्यूँ तिरों रे, म्हारो पाँण[5] न पूजै कोइ ॥
एकही पेवट नाव विन, डाभक डूभक होइ ॥टेर॥
अति औंडो आसघ[6] नहीं, कीजै कौन उपाइ ॥
पार परोहन[7] नीसरै, जे हरिजी होइ सहाइ ॥१॥

---

[1] आघाषिसै = आगेसरकै, दूरहटै। [2] घात = हिंसा। [3] गैवर = अभिमानी। [4] कादो = कीचड़। [5] पाण = पाणि, हाथ।

+ हिंसा रूपी घटा उमड रही है, अहकार गर्व गर्जना कर रहाहै, तृष्णा रूपी बिजली चमक रहीहै—वासना रूपी जल वरस रहा है जिस से सम्पूर्ण ससार भीग रहा है।

[6] आसघ—साहस, हिम्मत। [7] परोहन = नौका।

पँाच कुसंगी[१] संगि रहे, × झूँडा झूँडे भाइ ॥
जे हूँ तिरिवा की करों, तो आधो देइ धिकाइ[२] ॥२॥
पॅाण नहीं पॅाणी महीं, झेले पडी न बाथ ॥
जे तूँ तारै तो तिरौं, हरिजी पाकडि हाथ ॥३॥
भो सागर मे डूबतां, अबकै लेहु उबारि ॥
बषना दे रे बूबडी[३] साहिब कै दरबारि ॥४॥

राषिले हो रामादेवा, हू वहतो सादकरों[४] हो ॥
देवा इंहि भोजल, माँहि डरों हो ॥टेर॥

भोजल भरिया सागरा, मोहि झकोला[५] देइ ॥
तुम्ह बिहूणा रामजी, मूनैं कोई काढ न लेइ ॥१॥
भो सागर में डूबताँ रे, कासूँ करों पुकार ॥
सो मूंनै सूझै नहीं, कोई तुम्ह बिन थाँभणहार ॥२॥
काल नदी का घाट मैं, केता डूबा आइ ॥
जे तूँ काढै केसवा, तो पारि परोहन जाइ ॥३॥
तेरी भगति परोहन भोजला, मोहि चढाइ किन लेइ ॥

---

१ पांच कुसंगी रूपरसादि पांच विषयों की प्रवृत्ति वह सर्वदा साथ रहती है। २ धिकाइ—सरका देना, हटा देना। ३ बूबडी—पुकार, जोर की आवाजसे कहना। ४ सादकरों—पुकार करूँ, दुहाई दूँ। ५ झकोला—हिलोरें।

×झूँडा झूँडे भाइ=बुरे को बुराई ही अच्छी लगती है।

चपना डूबै देपतां तूँ डूबण मति देड हो ॥४॥

१६१

भजि रे मन हरिचरण, स्वामी असरण सरण
पतित पावन जाको विडद छाजै
करम कानैं[1] करण दुख दालिद्र हरण
विना गोविंद क्यूँ भीड[2] भाजै ॥टेर॥
* जेथि जीव ऊबरे, काज कोई सरे,
सो नहीं कोई आपणै लोक मांही ॥
जीव को सगो[3], संसार मे सोधियो[4]
विना गोविंद कोई और नांही ॥१॥
तैं करम जेता किया, नहीं छूटै हीया[5] ॥
जीव जोलै पड्यो असति भापै ॥
तीन लोक मैं कहूँ ठाहर नहीं ॥
राम विना दूसरो कौण रापै ॥२॥
वो विरद मोटो वहै, पार को ना लहै ॥
तास की सापि, सुण साधू भणै ॥

---

[1] कानैं—एक तरफ, किनारे । [2] भीड=कष्ट, मुसीबत । [3] सगो—साथी । [4] सोधियो—तलाश किया, ढूँढा । [5] हीया = ऐसेही, इसतरह ।

*जेथि जीव ऊबरे—जिसके ससर्ग से जीव उद्धार को प्राप्त हो ।

वात वपना वणैं, समझि घर आपणैं
चालि मन चालि मन तास सरणैं ॥३॥

१६२

भरमतो भरमतो, तुम्हारै सरणै आयो ॥
दीन दयाल पतित पावन, एक तूँ ही वतायो ॥टेर॥
चौरासी लप भरमतो आयो, तुम्हारो घर नीठि[1] पायो ॥
अनाथ को नाथ एक, तूँ ही ज वतायो ॥१॥
और जे बाँधै धाइ, दाम दे लीजै छुडाइ ॥
कर्म को बाँध्यो तुम्ह पै छूटै, रामइया राइ ॥२॥
सारां ही साधाँ वताई, उवरण की ठौर याई ॥
बूझि[2] वपनो सरण आयो, रापि लै राम राई ॥३॥

१६३

× देपी मैं डाकणि जरपि चढी ॥

+ मैंने माया रूपी डाकण को वासना रूपी जरप पर चढी हुई देखी है। वह कोई ऐसा मोह का मंत्र पढती है कि सब संसार उस के चंगुल में फँस जाता है, विषय वासना रूप पाँच वीर उसके साथ रहते हैं, तृष्णा, निंदा, ममता कुबुद्धि आदि जोगणियें जिनसे प्रसन्न हैं। बहुत से तंत्र मंत्र, टूणा जाननेवाले हार गये हैं न जलाये जलती है न डुबोये डूबती है—बपनाजी कहते हैं इस डाकण से गुरु देव द्वारा दिया हुआ—हरि नाम मंत्री बचा सकता है और उपाय सब व्यर्थ हो जाते हैं।

[1] नीठि = कठिनतासे, बहुत खोजके बाद   [2] बूझि = पूछकर ।

[1]लेवेका छोडण का नाँही, कोई अैसो मंत्र पढी ॥टेर॥
पाँच[2] वीर जाकै संगि डोलै, सव जोगणि मन भावे ॥
नगनि भई, चढवा कै कारणि, वन मैं जरप वुलावे ॥१॥
लापसडी का लोंदा[3] करि करि, आपण पाइ पुलावे ॥
जव यहु लोग सहर को सोवे, तवै सराडा[4] घावे ॥२॥
पाडोसणि पण हाँते[5] आई, संग मिली गटकावे[6] ॥
भूपी ह्वै तवही भष[7] माँगे, मूवा मसाण जगावे ॥३॥
वहुत सयाने पचिपचि हारे, कोई मंत्र न लागै ॥
जाली जलै न जल में वूडै, नीसरि २ भागै ॥४॥
टूनर मंत्र सोफोत्री का सव, हरि को भजन उडावे ॥
"वषना" अैसा गुरू हमारा, डाकणिलिया छुडावे ॥५॥

(साषी)

मनसा डाकणि मन जरप, दौडावे दिन राति ॥
"वषना" कदेन ऊतरे, सांझ जिसी परभाति ॥६॥

---

[1] लेवेका—लेने का । [2] पाँचवीर = पाँच प्रकार की विषय वासना । [3] लोंदा = वडे वडे ग्रास । [4] सराडा घावे = सपाटे लगवावे । [5] हाँते आई = विवाह, नुकते, तथा अन्य उत्सव के समय बनाई गई भोज्यसामग्री को पडोसियों तथा व्यवहारियों में बाँटने को हाँता, कहते हैं । [6] गटकावे = खावे । [7] भष माँगे = बलि माँगे ।

पद १६४

[१]आरसडी ऊजली रे, तामैं मुपडो दीठो जाइ ॥
जिहि की मैली आरसी, [२]काठ रह्यो तिहिं ठाइ ॥ टेर ॥
काम क्रोध का मोरचा, भरम करम को काठ ॥
आरसडी दीठो नहीं, कबहूँ सिकलीगर को [३]हाठ ॥ १ ॥
कारीगर सतगुर मिलै, सबद [४]मसकला लाइ ॥
आतम कीन्हीं ऊजली, ता मैं निरमल दरसन थाइ ॥ २ ॥
एक तवा एक आरसी, ऊहै बहन ऊहै वीर ॥
ऊहै कुसंगति थै कालो हुवो ऊहिं को निरमल देप सरीर ॥३॥
एकही [५]आरण नीपनां, एकही घडथा लुहार ॥
दोन्यूँ एकै लोहका, वपना देखि विचार ॥४॥

१६५

हरिभज लाहो लीज्यो रे ॥
थारो जनम सुफल सो होइ, तूँ अहलो यूँही न खोइ ॥टेर॥
[६]लाहो साधूं सेवियां रे, लाहो भगति कीया ॥

---

[१] आरसडी=दर्पण । [२] काठ=मोरचा, जर । [३] हाट—दुकान । [४] मसकला—रगड़, सांण [५], आरण=घण--लोहे का एक औजार जिस पर रख कर लुहार लोहे की चीजं गढा करता है । [६] लाहो—लाभ ।

जीवन मुक्ति फल पांमिये[१], हरि जी को नांव लीया ॥१॥
साधां सेती गोठडी[२] रे, कोटि करैं अपराध ॥
धनि रे दिहाडो आज को, म्हारे द्वारे आया साध ॥२॥
धन जोबन सब पाहुणों[३] रे, आइ मिल्या दिन दोइ ॥
फिरती फिरती छांहडी, जातां वार न होइ ॥३॥
नैणां वैणां श्रवणा रे, रसना रामइयो गाइ ॥
जनम सुफल करि आपणों, वपना विलम न लाइ ॥४॥

१६६

तहां मन भयो रे अडोल[४] ॥
म्हारे मन वसियो रे, गुर म्हारा को वोल[५] ॥टेर॥
थिति[६] मांहै थिति पाई, आगम थी सो गुरि वताई ॥
तहां लागो मन लाई, तहां उपजै नहीं और काई ॥१॥
चंचल था सो निह्चल कीया, जाइ था सो फेरि लीया ॥
ऐसा गुरि उपदेस दीया, तिहि आलंवन लागि जीया ॥२॥
सवद मांहि सतोप पाया, मन था सो तहां लाया ॥
कह्या सो हाथि आया, राम रमि सहजि समाया ॥३॥

---

[१] पांमिये--पाइये । [२] गोठडीरे-गोष्ठी समागम । [३] पाहुणा--अतिथि । [४] अडोल--स्थिर, निश्चल । [५] बोल = उपदेश, शब्द । [६] थिति = सम्पत्ति ।

जहां गुरि थापना[1] थापी, जप करै जहां पंच जापी ॥
प्रगट्यों तहां आप आपी, निरपि "वषना" सकल व्यापी ॥४॥

१६७

आरती

आरती करि आरती, आतमा ऊजली[2] ॥
रामजी पधार्यो म्हारे, पूरवन[3] रली ॥टेर॥
तेतीस समांना ऊपरि चाढी, चँवर ढुलावे इकपग ठाढी ॥
पंच सवद घंटा निरवाणी, झालरि बाजै राम नांम वांणी ॥१॥
पांच तत्त को दीपक धार्यो, जोति सरूपी ऊपरि वार्यो ॥
दसवें द्वारि देव मुरारी, सनमुप सुंदरि पूजणहारी ॥२॥
मन पंडो तिंहि सेवा मांही, "वषना" वारै आवे नांही ॥३॥

॥ इति ॥

---

[1] थापना = स्थिति स्थापना । [2] ऊजली—निर्मल, दोपरहित । [3] पूरवन रली = इच्छा पूरी करने वाले ।